ॐ नमः श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

योग दिव्य प्रवचन

योगाचार्य श्री चमनलाल कपूर
के योग प्रवचनों का सार संग्रह

संग्रहकर्ता
प्रो. कृष्ण लाल खेतरपाल

प्रकाशक :
योग साधन आश्रम
3-एल, माडल टाऊन, होशियारपुर (पंजाब)
फोन : 01882-225223

ॐ नमः श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

योग दिव्य प्रवचन

योगाचार्य श्री चमनलाल कपूर जी
के योग प्रवचनों का सार संग्रह

संग्रहकर्ता
प्रो. कृष्ण लाल खेतरपाल

द्वितीय बार 1000
योगेश्वर राम लालाब्द 127
विक्रम संवत् 2072
माघी 2016

भेंटः रु. 60/-

ॐ

योग वन्दना

योग–विद्यां नमाम्यहम्

❋ योग तुझे नमस्कार ❋

सुन्दर करे जो देह को, करे दुखों से पार ।
तेज रूप तप रूप जो, योग तुझे नमस्कार ॥१॥
करे समत्व दान जो, शक्ति सिरजनहार ।
चित्तवृत्ति निरोधहित, योग तुझे नमस्कार ॥२॥
आदिनाथ से ऊपजा, चेतनता का सार ।
जागृत कुण्डली जो करे, योग तुझे नमस्कार ॥३॥
राम लाल जिस का किया, कलियुग में उद्धार ।
मुलखराज के "सेवक", का तुझे नमस्कार ॥४॥

चमन लाल कपूर 'सेवक'

ॐ नमः श्री रामलाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

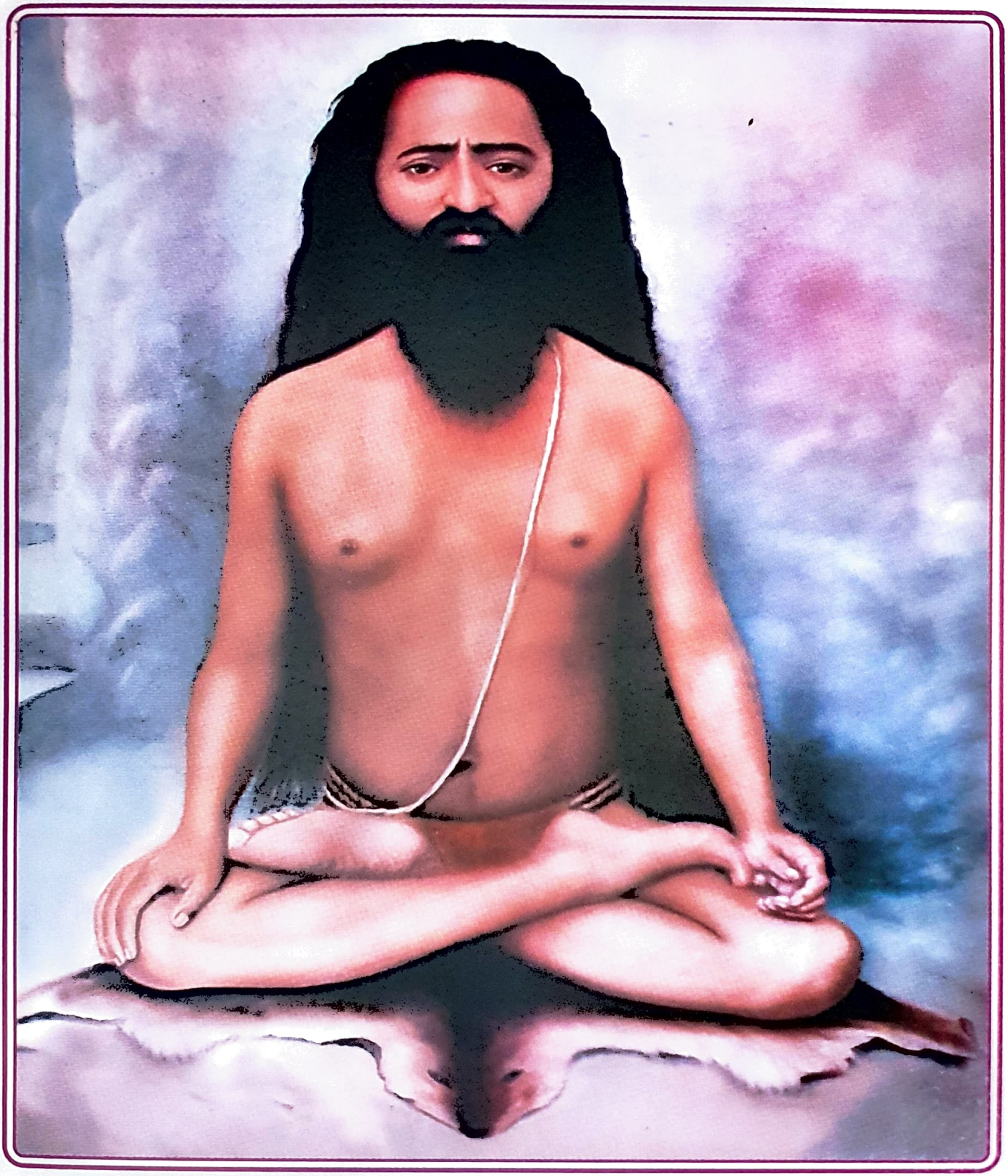

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

योग दिव्य प्रवचन

विषय सूची

प्रवं सं.	विषय	पृष्ठ सं.
(i)	**योगाचार्य प्रो. चमन लाल कपूर (जीवन परिचय)**	1
(ii)	**योग को पूरे विश्व में प्रसारित किया स्वामी मुलखराज जी ने**	5
1.	बुद्धि की शुद्धि ही स्वाध्याय का लक्ष्य	9
2.	योग के नियम अपनाकर परलोक संवारा जा सकता है	12
3.	गुरु, योग व मोक्ष हिंदू धर्म के आधार हैं	14
4.	भगवान भी कर्मों का फल नहीं बदल सकते	16
5.	योग विद्या सबसे श्रेष्ठ	18
6.	तामसिक भक्ति करने वालों को नरक मिलता है	21
7.	योग के संस्कार ही भविष्य जीवन का आधार	23
8.	बहिर्मुखी मनुष्य का जीवन पशु समान होता है	25
9.	इधर-उधर भागने वालों को मंज़िल नहीं मिलती	27
10.	योग के माध्यम से दु:खों से मुक्ति पाई जा सकती है	29
11.	संस्कार ही हमें गुरु की शरण में लाते हैं	31
12.	योगी भगवान का स्वरूप बन जाता है	33
13.	योग से ही जीवन का विकास संभव	35
14.	अविद्या की शक्तियाँ मानव को धर्म के मार्ग पर चलने नहीं देती	37

प्रवं सं.	विषय	पृष्ठ सं.
15.	शारीरिक व मानसिक सुख केवल योग से ही संभव	39
16.	योग सभी धर्मों का आधार	41
17.	योग ही है दु:खों का हल	43
18.	ऋषि मुनियों की विद्या को पुनः जीवित किया प्रभु रामलाल ने	45
19.	योग ही मानव संस्कृति का आधार है	49
20.	तप, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग	51
21.	गुरु पर संशय करने वाला विनाश को प्राप्त होता है	53
22.	आत्मा का उद्धार योगमार्ग पर चलकर ही	55
23.	संतोष सभी मानसिक बीमारियों का ईलाज है	57
24.	फल की इच्छा का त्याग मुक्ति द्वार तक ले जाता है	59
25.	राजयोग से मन को प्रबल किया जा सकता है	61
26.	योग के बिना मन एकाग्र होना असंभव	63
27.	आज रावण हमारे शरीर रूपी लंका में रहता है	65
28.	श्रद्धापूर्वक कर्म करने से आत्मा का उद्धार हो सकता है	67
29.	दिखावटी भक्ति से प्रसन्न नहीं होते भगवान	69
30.	योग ही जीवन को सुखी बनाने का साधन	71
31.	केवल सांसारिक इच्छा ही पूरी करवाने वाला गुरु हितैषी नहीं होता	74
32.	मृत्यु भी योगी के वश में होती है	76

प्रवं सं.	विषय	पृष्ठ सं.
33.	मानव को भगवान द्वारा दी गई संजीवनी विद्या का नाम योग है।	78
34.	गृहस्थ आश्रम ही संसार का आधार	81
35.	मन तथा शरीर के रोगों का निवारण योग से ही संभव	83
36.	प्रभु भक्ति तामसिक गुणों को समाप्त करती है	85
37.	शरीर को रोगमुक्त रखने के लिए योग आवश्यक	87
38.	योग में हैं ज्ञान व शक्ति	90
39.	योग साधन करने वाला कष्ट आने पर भी नहीं भटकता	92
40.	विदेशों में भी पिलाया जा रहा है योग का अमृत	94
41.	योग नियमों का पालन करने वाला अपना उद्धार करने में सक्षम	96
42.	योग से मन प्रकाशमय होता है	98
43.	सुख जीवन का उद्देश्य	100
44.	योग भावी दु:खों का समाधान	102
45.	लालची गुरु शिष्य को सन्मार्ग नहीं दिखा सकता	105
46.	सद्गुरु की प्राप्ति के बिना भटकता रहता है मन	107
47.	ईर्ष्यालू मन प्रभु भक्ति नहीं कर सकता	109
48.	मुक्ति प्राप्त हेतु बाहरी शुद्धि के साथ आंतरिक शुद्धि भी आवश्यक	111
49.	शांति के लिए योगी गुरु की शरण में जाना होगा	113

प्रवं सं.	विषय	पृष्ठ सं.
50.	योग के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं मुक्ति व मोक्ष	115
51.	योग साधना मोक्ष का उपाय	117
52.	प्राण दिल की गति को भी चलाता है	119
53.	योग द्वारा ही जीवन का कल्याण होता है	122
54.	मन के रोग अधिक संक्रामक	125
55.	संतोष प्राप्ति के लिए इन्द्रियों पर काबू पाना आवश्यक	128
56.	अज्ञान ही सभी दु:खों का कारण	131
57.	स्फूर्ति व शक्ति हठयोग के फल हैं	133
58.	गुरु के बिना मानव भटकता रहता है	136
59.	पाप और पुण्य कर्मों के अनुसार ही चलता है जीवन चक्र	138
60.	मोह भी मानसिक दु:खों का एक कारण है	140
61.	लौकिक कार्यों का भी परमार्थ से सीधा संबंध	142
62.	हठयोग व राजयोग के बिना भक्ति योग की धारा नहीं बहती	144
63.	योग के कुछ साधन ही बहुत से रोगों को ठीक कर देते हैं	147
64.	ईश्वर भक्ति के साथ-साथ पितृ भक्ति व देश भक्ति भी जरूरी है	150
65.	योग भविष्य में आने वाले दु:खों को दूर करता है	152

प्रवं सं.	विषय	पृष्ठ सं.
66.	बिना गुरु कृपा के कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता	155
67.	योग भारतीय संस्कृति का एक अटूट अंग है	157
68.	गुरु विहीन व्यक्ति संसार में भटकता रहता है	159
69.	जिज्ञासु को गुरु स्वयं आकर मिलता है	162
70.	एकाग्र मन व स्थिर बुद्धि वाले का परलोक भी सुधर जाता है	165
71.	गुरु के बिना मन में भगवान की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती	168
72.	नारी का अपमान भारतीय संस्कृति पर कलंक है	171
73.	गुरु और शिष्य का आध्यात्मिक संबंध होता है	174
74.	धार्मिक शिक्षाओं का अनुसरण किए बिना तीर्थ यात्रा का कोई लाभ नहीं	176
75.	गुरु ही भक्ति के बीज को अंकुरित करता है	178
76.	इन्द्रियों को वश में करना ही तप	181

प्राक्कथन

योग साधन आश्रम होशियारपुर में रविवार के सत्संग का कार्यक्रम सद्गुरु देव योगिराज श्री चमन लाल कपूर जी की कृपा से लगभग 50 वर्षों से चला आ रहा है। इसके अतिरिक्त हर गुरुवार को हवन करने का नियम भी बना हुआ है। आश्रम में तीन मुख्य उत्सवों के अतिरिक्त श्रद्धालुओं के घरों में तथा दूर-दूर तक अन्य नगरों में भी सत्संगों का आयोजन होता है। इन अवसरों पर हवन, आरती तथा श्री योग महादिव्य रामायण का पाठ होता है। योग के प्रदर्शन भी होते हैं। परन्तु इनमें जो मुख्य आकर्षण है, वह है श्री सद्गुरु देव जी के मुखारविंद से निकसित व्याख्यान। इन व्याख्यानों में गुरुदेव योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज एवं योगेश्वर स्वामी मुलखराज जी के उपदेशों एवं योग शिक्षाओं पर प्रकाश डालते हैं। योग क्या है तथा हमारा जीवन किस प्रकार योग और भक्ति युक्त होना चाहिए ऐसे विषयों पर भी भक्तों को शिक्षा देते हैं। ऐसे मूल्यवान उपदेशों को कैसे संभाल कर रखा जाए? यह एक समस्या थी। मास्टर श्री संदीप सूद को योग शिक्षा में रुची हुई तथा वह प्रति रविवार आश्रम के सत्संग में आ

कर इन प्रवचनों को तत्स्थान सुन कर लिखते। गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त कर वह इन का सार कई दैनिक एवं साप्ताहिक समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाने लगे। इन प्रवचनों को जनता बड़ी उत्सुकता से देखती व पढ़ती। इन्हीं प्रवचनों को संग्रह कर इस पुस्तक में प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है श्रद्धालु जिज्ञासु सज्जन इन प्रवचनों से लाभान्वित होंगे।

****

योगाचार्य प्रो. चमन लाल कपूर
(जीवन परिचय)

योग साधन आश्रम 3-एल, मॉडल टाउन, होशियारपुर के मुख्य आचार्य प्रो. चमन लाल कपूर का जन्म 30 मार्च 1917 को जम्मू (काश्मीर) में क्षत्रिय परिवार में हुआ। आपके पिता लाला ज्ञान चन्द कपूर अत्यन्त ईमानदार और धर्मनिष्ठ पुरुष थे, और काश्मीर राज्य की सेवा में थे। आपकी माता श्रीमती लाजवन्ती धर्म कर्म में प्रवृत्त रहतीं और सन्तान की शिक्षा दीक्षा में विशेष रुचि लेतीं।

प्रो. चमन लाल संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू के विद्वान हैं। आप की प्रारम्भिक शिक्षा जम्मू और श्रीनगर में हुई जहां से आप ने बी.ए. तक शिक्षा ग्रहण की। उसके उपरान्त आप लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे।

अपनी उच्च शिक्षा पूरी कर आप कॉलेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए और भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसी पद पर आसीन रहे।

लाहौर में आपका श्री स्वामी मुलख राज जी महाराज, प्रधान आचार्य योग साधन आश्रम छेहरटा (अमृतसर) और ऋषिकेश, से सम्पर्क हुआ और उन्हीं से आपने 1940 में छेहरटा आश्रम में योग की दीक्षा प्राप्त की। बचपन से ही प्रो. चमन लाल साधु महात्माओं के प्रेमी थे और उनकी संगति

करते रहते। विशेषकर काश्मीर में जहां देश-विदेश से विद्वान आते तो उन की संगति इन्हें करने का अवसर मिलता। आपके पूज्य पिता जी आपको अपने साथ धार्मिक सम्मेलनों मे ले जाते जहां से आप की रुचि धर्म ग्रन्थों के अध्ययन और आध्यात्मिकता की ओर बढ़ती रही। परन्तु आप को पूर्ण संतुष्टि श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज के चरणों में आकर ही हुई। उन से आपने योग के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया।

कॉलेज में प्रोफेसर और प्रिंसिपल के पदों पर कार्यरत होते हुए भी आप अपने विद्यार्थियों और जनता को योग की शिक्षा निरन्तर देते रहते और आप से पढ़े हुए विद्यार्थी तभी से योग में रुचि ले रहे हैं।

प्रो. चमन लाल कपूर ने अपने सद्गुरु स्वामी मुलख राज जी की आज्ञा और आशीर्वाद से होशियारपुर में, जहां ये उस समय गवर्नमैंट कॉलेज में प्रोफेसर थे, 1952 में "योग साधन आश्रम" होशियारपुर की स्थापना की और जनता को तथा अपने विद्यार्थियों को योग प्रशिक्षण देने लगे। योगेश्वर श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज प्रति वर्ष उक्त आश्रम में पधार कर होशियारपुर की जनता को कृतार्थ करते।

दश वर्ष होशियारपुर कॉलेज में रह कर आपका स्थानान्तरण शिमला में हो गया और शिमला तथा अन्य स्थानों पर अपने सेवा काल में आप हिमाचल में अपने विद्यार्थियों तथा जन साधारण में योग का विस्तार करते रहे। आप की अनुपस्थिति

में भी होशियारपुर में योग प्रचार का कार्य निरन्तर होता रहा और आप अवकाश में आकर स्वयं इस कार्य का भार संभालते। अप्रैल 1975 में आपने गवर्नमैंट कॉलेज ऑफ एजुकेशन धर्मशाला से, जहां पर आप प्रिंसीपल थे, सेवा निवृत्त होकर होशियारपुर आकर योग का कार्यभार सम्भाला और पूरा समय इस के प्रचार विस्तार में लग गया।

प्रो. चमन लाल कपूर का विवाह सन् 1943 में श्रीमती राजरानी से हुआ जो विवाह उपरान्त योगेश्वर स्वामी मुलख राज जी महाराज से छेहरटा के आश्रम में दीक्षित हुईं। उन्होंने अपने पति का योग प्रचार में पूरा-पूरा सहयोग दिया। स्त्रियों को योग की शिक्षा और आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान निरन्तर देती रहतीं। अपने पति के साथ इन्होंने योग प्रचार हेतु भारत वर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों का भ्रमण किया और हिमाचल के दुर्गम प्रदेशों में कई-कई दिनों तक पैदल यात्रा की। यह सदा कहतीं कि मैंने अपने पति परमेश्वर की सेवा तथा योग प्रचार के लिए ही जन्म लिया है। इन के शुभ विचारों का प्रभाव इन की सन्तान पर विशेष रूप से हुआ और वे सभी उच्च शिक्षा प्राप्त कर भारत तथा विदेशों में अपने-अपने कार्य को करते हुए योग के प्रचार में भी व्यस्त रहते हैं। श्रीमती राजरानी जी अपने पति के साथ चार बार अमेरिका, इंग्लैंड और कैनेडा की योग यात्रा भी करने गई और अपने बच्चों द्वारा किये जा रहे कार्यों से संतुष्ट हुई।

सेवा निवृत्त के दीर्घकाल में प्रो. चमन लाल जहां आश्रम के संचालन, योग प्रचार और योग यात्राओं में व्यस्त रहे, वहीं एक विस्तृत योग साहित्य का निर्माण भी किया जिसमें मुख्य आप द्वारा रचित आठ खण्डों में (वर्तमान में ग्यारह खण्डों में) **"श्री योग महादिव्य रामायण"** हैं जो योग के प्रत्येक विषय का महान ग्रन्थ माना जाता है। 45000 पद्यों का यह ग्रन्थ प्रो. चमन लाल कपूर की 30 वर्ष की लेखन साधना के फल स्वरूप है और हज़ारों योग जिज्ञासु भक्तों का पाठ्य ग्रन्थ है।

प्रो. चमन लाल कपूर इस समय अपनी 86 वर्ष की आयु में पूरे कर्मठ हैं और सैकड़ों विद्यार्थियों को आश्रम में योग की शिक्षा देने में तथा कुछ लेखन कार्य में रत रहते हैं। लगभग 100 योग साधक प्रतिदिन प्रातः आकर आपसे निःशुल्क योग के साधन एवं आसन सीख कर लाभान्वित हो रहे हैं। हिमाचल, पंजाब, हरियाणा तथा भारत के कई अन्य राज्यों के हज़ारों लोग आप से योग भक्ति एवं ध्यान साधना सीख कर अपना जीवन सुमार्ग पर चला रहे हैं। प्रभु आप की दीर्घायु करें और आप योग की तथा समाज की सेवा में रत रहें।

डॉ. अमिता रश्मि

चण्डीगढ़, 12 जुलाई, 2002

योग को पूरे विश्व में प्रसारित किया स्वामी मुलखराज जी ने

योग विद्या संसार की प्राचीनतम विद्या है। योग ऋषियों, मुनियों की विद्या है। भारत को ऋषियों, मुनियों की धरती कहा जाता है। लेकिन क्योंकि भारत लंबे समय तक गुलाम रहा, इसलिए विदेशी शासकों ने योग के प्रसार की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। योग जंगलों में चला गया था। लेकिन योगेश्वर प्रभु रामलाल जी इसे वापिस हम सबके बीच लाए। प्रभु रामलाल जी के परम भक्त स्वामी मुलखराज जी ने प्रभु जी की प्रेरणा से योग विद्या का भारत के प्रत्येक भाग में प्रचार व प्रसार किया।

स्वामी मुलखराज जी का जन्म जिला गुरदासपुर की तहसील बटाला के दलेरपुर नामक ग्राम में विक्रमी संवत 1955 माघ संक्रांति को लाला देवी दास जी के घर हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती रत्न देवी था। आठ वर्ष की आयु में स्वामी जी की चाची का देहांत हो गया। इस घटना का बालक मुलखराज पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा अल्पआयु में ही वैराग्य की जागृति हुई। स्वामी जी शिक्षा में रुचि न लेकर साधु संतों की संगत में रहने लगे। कई संतों से मिले, लेकिन ईश्वर प्राप्ति की इच्छा की पूर्ति किसी स्थान पर न हो सकी। बीस वर्ष की आयु होने पर स्वामी जी की शादी कर दी गई

लेकिन गृहस्थ में प्रवेश करने पर भी आपके वैराग्य में कमी न आई। स्वामी जी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण क्षण तब आया जब संवत् 1977 वि. में उन्हें योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन करने का अवसर मिला। प्रभु दर्शनों का स्वामी जी पर विलक्षण प्रभाव हुआ।

जब प्रभु रामलाल जी ने स्वामी जी को ध्यान में बैठने की विधि बतलाई तो प्रभु जी ने अपनी कृपा से तत्क्षण स्वामी जी को "ईश्वर दर्शन" करवा समाधि अवस्था प्रदान कर दी। प्रभु जी की कृपा से स्वामी जी को योग की उच्चतम भूमियों की प्राप्ति हुई। कुंडलिनी जागृति से देवताओं का साक्षात्कार हुआ। प्रभु दर्शन का प्रवाह सतत बना रहने लगा। उनकी वृत्ति प्रभु जी के स्वरूप में लीन हो गई।

स्वामी जी का रात्रि के समय सोने से पूर्व दो घंटे समाधि में बैठने का नियम था। कभी-कभी दिन की थकान के कारण निद्रा आती तो मन को धिक्कारते कि पूर्ण सद्गुरु के मिलाप पर भी सोने में जीवन को खोना क्या अच्छा है? अतः स्वामी जी छत से रस्सी अपनी चोटी के साथ कस कर बांध लेते ताकि यदि नींदवश झपकी आए तो चोटी को खिंचाव लगने से सचेत हो जाएं। एक दिन ऐसा ही हुआ, चोटी उखड़ते-उखड़ते बची। परंतु संभलकर फिर समाधि में बैठ गए और चित्त ध्येय में लीन हो गया।

सुबह जब स्वामी जी प्रभु जी के दर्शन करने गए तो प्रभु जी ने अपने सिर पर हाथ फेरा व अपनी चोटी के कुछ बाल स्वामी जी के सम्मुख रख कहा कि बेटा शरीर को इतना कष्ट न दिया करो। तुम्हारे कष्ट को न सह सकने के कारण ही हमारी चोटी के बाल उखड़ गए। स्वामी जी को बहुत संकोच हुआ तथा वह प्रभु के ध्यान में तल्लीन हो गए। एक दिन प्रभु जी ने स्वामी जी को वरदान मांगने को कहा तो स्वामी जी ने कहा कि महाराज मुझे तो केवल आपके चरणों की धूली चाहिए। प्रभु जी ने कहा कि चाहो तो लोक परलोक मांग लो, लेकिन स्वामी जी अपनी बात पर कायम रहे। स्वामी जी देर रात तक प्रभु जी की सेवा में रहते, घर में स्वामी जी की पत्नी, स्वामी जी का इंतजार करती। परंतु छोटी आयु में ही स्वामी जी की पत्नी का देहांत हो गया। स्वामी जी के जीवन की कई घटनाएं ऐसी हैं जिनसे उनके तेज का आभास होता है। एक बार एक महिला प्रभु जी के पास आई कि उसके पति को भूत लगा है। प्रभु जी ने उसे मुलखराज जी की कमीज़ ले जाकर अपने पति को पहनाने के लिए कहा। कमीज़ पहनते ही कुछ देर बेसुध रहने के पश्चात् उसका पति बिल्कुल ठीक हो गया। जब 1931 ई. में लाहौर में योग साधन आश्रम की स्थापना हुई तो प्रभु रामलाल जी ने स्वामी जी को वहां का आचार्य नियुक्त कर प्रचार कार्य में भी प्रवृत्त कर दिया व कहा कि अब आप संस्कारी वर्ग में ध्यान समाधि दान देते चलो। आप द्वारा रोगियों को निरोग्यता तथा संस्कारी शरणागत जीवों

को ध्यान समाधियों की प्राप्ति होती रहेगी। 31 जुलाई 1938 को जब प्रभु जी ने अपनी जीवन लीला रमा ली तो सभी आश्रमों का कार्यभार प्रधान आचार्य के रूप में स्वामी मुलखराज जी ने संभाला।

ऋषिकेश व छेहरटा के आश्रम उनकी निजी देखरेख में चलते थे। 1940 में योगाचार्य चमन लाल जी को स्वामी मुलखराज जी के दर्शन करने का सुअवसर मिला। स्वामी जी से दीक्षा ग्रहण करने के बाद आप भी योग मार्ग पर अग्रसर हुए। 1952 में स्वामी जी ने योगाचार्य जी के निवास 3 एल मॉडल टाऊन में **'योग साधन आश्रम'** की स्थापना की। 1960 में 3 नवम्बर को स्वामी जी ने समाधि अवस्था में शरीर छोड़ा व अपने सद्गुरु के परम धाम को चले गए। स्वामी जी के भक्त चमन लाल जी आज सब तरफ योग की गंगा बहा रहे हैं। योग साधन आश्रम होशियारपुर व उसकी शाखाओं में उमड़ती श्रद्धालुओं की भारी संख्या इस योग गंगा में स्नान कर अपना जीवन सफल कर रही है। योग साधन आश्रम में योग की शिक्षा नि:शुल्क दी जाती है। आओ आज हम भी प्रण लें कि हम योग के महत्व को समझते हुए इसे अपने जीवन का एक अंग बनाकर अपना जीवन सफल बनाने का प्रयास करेंगे।

मास्टर संदीप कुमार सूद

****

प्रवचन संख्या-1

बुद्धि की शुद्धि ही स्वाध्याय का लक्ष्य

(आरती-पूजा व मंदिरों में जाना ही भक्ति नहीं)

परिवार की चिंता में लगे रहना अथवा पशुओं की तरह रहना ही जीवन नहीं है। मानव जीवन अमोलक है, हमें इसके मूल्यों को समझना चाहिए। योग मार्ग ही जीवन को सफल बनाने का सच्चा मार्ग है। योग का आरम्भ ही नियमों से होता है। इन नियमों पर चलकर ही हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति का कोई अन्य उपाय नहीं है। योग के पांच नियम हैं - शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान। यदि हम इन नियमों पर चलते हैं तो जीवन में कभी भटकेंगे नहीं। शौच का अर्थ है शुद्धि। अगर हमारा जीवन शुद्ध नहीं होगा तो हमारा ध्यान भक्ति में कैसे लगेगा? स्वाध्याय कैसे होगा? शौच का अर्थ है कि हम शरीर, मन व बुद्धि को शुद्ध करें। शरीर की शुद्धि के लिए शास्त्रों में लिखा है यह जल द्वारा की जाती है।

योगी को केवल जल चाहिए, वह उससे स्नान भी कर लेता है तथा अपने शरीर के अंगों को भी शुद्ध कर लेता है।

अगर ऐसा न हो तो शरीर में कई तरह के रोग आ सकते हैं। रोगी शरीर भक्ति नहीं कर सकता। भीतर से शरीर को शुद्ध करने के लिए योग में क्रियाएं बतलाई गई हैं। मन को केवल भक्ति द्वारा शुद्ध किया जा सकता है। केवल आरती, पूजा अथवा मंदिरों में जाना ही भक्ति नहीं है। भक्ति ईश्वर को एकाग्र मन से स्मरण करने से होती है। भक्ति दो प्रकार की है - निष्काम और सकाम भक्ति। निष्काम भक्ति में हम मोक्ष के लिए प्रभु को याद करते हैं। इसमें माया को बीच में नहीं लाना चाहिए। सकाम भक्ति में हमारा कोई न कोई सांसारिक उद्देश्य होता है। जितनी सकाम भक्ति होगी उतना अधिक मन अशुद्ध होगा। अशुद्ध मन से मोक्ष नहीं मिलता। सच्चे भक्त को ईश्वर से दुनियावी चीजें मांगने का नुकसान भी होता है। जो भक्त भगवान से कुछ नहीं मांगता, भगवान उसको भी बहुत कुछ दे देते हैं। सकाम भक्ति वाले को कभी मुक्ति नहीं मिलती। बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है। ज्ञान का माध्यम स्वाध्याय है। यह ईश्वर प्रणिधान से पहले आता है। स्वाध्याय का लक्ष्य बुद्धि की शुद्धि है। लक्ष्य की तरफ ध्यान देने से ही लाभ होता है। बुद्धि भी तीन प्रकार की होती है- तामसिक, राजसिक और सात्विक। तामसिक बुद्धि वाला दूसरों को नुकसान पहुंचाने का यत्न करता है। उसमें राग, द्वेष, क्रोध

आदि के विचार आते हैं। इन्हें शांत करने के लिए हमें अच्छे ग्रंथ पढ़ने चाहिए। राजसिक बुद्धि में हमारी बुद्धि सांसारिक कारोबार की तरफ घूमती रहती है। इसके लिए भी स्वाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय व सत्संग एक ही बात है। सात्विक बुद्धि में दूसरों का भला करने की तरफ ध्यान देते हैं। बुद्धि को तामसिक, राजसिक व सात्विक विचारों से शून्य कर प्रभु मार्ग की तरफ लगाना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-2

योग के नियम अपनाकर परलोक संवारा जा सकता है

(योग साधना द्वारा हर रोग का ईलाज संभव)

योग विद्या ऐसी विद्या है जिसे कोई छीन नहीं सकता जबकि संसार की दूसरी विद्याएं कई बार हमसे दूर चली जाती हैं। अथवा भूल जाती हैं। लेकिन योग विद्या न दूर जाती है न ही भूलती है। हम एक बार योग के जिन साधनों को सीख लेते हैं वह हमेशा हमारे साथ रहते हैं। योग के यम व नियमों द्वारा हम अपना परलोक भी संवार सकते हैं। योग द्वारा हम संसार के बहुत से दुःखों से बच सकते हैं। संसार में इतने दुःख हैं कि हम उनकी गिनती नहीं कर सकते। सिर से लेकर पांव तक न जाने कितनी बीमारियां हैं। लेकिन अगर हम योग करते रहें तो इनसे बच सकते हैं। योग से हमारे गिर्द सुरक्षा का चक्र बन जाता है। योग जानने वाला व्यक्ति स्वतंत्रता पूर्वक कष्ट से छुटकारा पा सकता है। वह दूसरे के पराधीन नहीं रहता। योग के अनेकों साधन हैं। सभी को तो शायद हम न सीख पाएं लेकिन जितने अधिक से अधिक सीखकर हम अभ्यास में लाएं उतने अधिक हम सुरक्षित हो सकते हैं। कई लोग बीमार होने पर योग की उपेक्षा कर औषधियों का सहारा लेते हैं। योग

का कोई दुष्प्रभाव नहीं होता जबकि औषधियों के बारे में ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। जलनेति, गजकरनी व दूधनेति द्वारा आंखों की दृष्टि ठीक की जा सकती है। इससे आंखों पर लगा चश्मा भी उतारा जा सकता है। गले के रोगों को वमन व धौति क्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है। सिरदर्द व जुकाम को जल नेति द्वारा ठीक किया जा सकता है। बार-बार आने वाले बुखार को वमन व शंखप्रक्षालन द्वारा ठीक किया जा सकता है। अधरंग (पक्षाघात) का रोग भी योग के साधनों द्वारा ठीक किया जा सकता है। भयंकर रोग जैसे गठिया अर्थात् जोड़ों का रोग, जिसमें सारे शरीर के जोड़ दर्द करने लगते हैं, हड्डियां तक मुड़ जाती हैं, यह भी योग में बतलाए शंखप्रक्षालन द्वारा ठीक हो जाता है।

पेचिश अथवा पेट दर्द का रोग सर्वांगासन द्वारा ठीक किया जा सकता है। दमा रोग को धौति क्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है। पीलिया रोग से प्रतिदिन वमन व दूध नेति करके मुक्ति पाई जा सकती है। कुछ लोग रोग आने पर पहले दवाईयों का सहारा लेते हैं, आराम न होने पर वह योग की तरफ भागते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें योग पर विश्वास करना चाहिए, उसी से रोग का ईलाज करना चाहिए। योग के साधन सीख कर ही करने चाहिएं अन्यथा नुकसान भी हो सकता है।

****

प्रवचन संख्या-3

गुरु, योग व मोक्ष हिंदू धर्म का आधार हैं

(प्रत्येक मनुष्य को कर्मों का फल भोगना पड़ता है)

गुरु, योग व मोक्ष ही हिन्दू धर्म के आधार हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथों, वेद, गीता, रामायण, महाभारत आदि में इन तीनों को ही धर्म का आधार बताया गया है। हम साधारण जीव हैं लेकिन फिर भी हमारा लक्ष्य मोक्ष होता है जबकि अन्य धर्मों का लक्ष्य मोक्ष नहीं है। मोक्ष प्राप्ति के आधार गुरु और दूसरा योग है। इन दोनों के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। शास्त्रों में लिखा है कि ***"मोक्ष मूलम् गुरु कृपा"***। परन्तु केवल गुरु मिल जाने मात्र से ही मोक्ष नहीं मिल जाता। जो लोग ऐसा सोचते हैं वे भ्रम में हैं। ऐसे लोगों के भ्रम का कई लोगों ने नाजायज़ लाभ उठाया है। अनेकों मठ इसी आधार पर चल रहे हैं। हमें अपने कर्मों का फल भुगतना ही होगा। अगर गुरु मिले हैं तो उनसे योग सीखना चाहिए तभी लाभ होगा। गुरु भी योगी गुरु होना चाहिए। वही शिष्य का सही मार्ग दर्शन करा सकते हैं। जो गुरु अपने शिष्य को पाप करने से नहीं रोकता, वह गुरु भी नरक में जाता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान देने के पश्चात कहा था कि योग का अभ्यास गुरु के पास रहकर उसकी सेवा और उस द्वारा हमारे

संशय की निवृत्ति से होता है। गुरु, योग व मोक्ष साधना, इन तीनों में से जब एक भी चीज़ छूट जाती है तो मनुष्य धर्म के मार्ग से वंचित हो जाता है। बिना गुरु की शिक्षा के योग भी नहीं आता। योग का आरम्भ यम, नियम से होता है। अगर हम इसे व्यवहारिक रूप से लें तो हमें देखना चाहिए कि हमारा आहार कैसा है। ***"जीवो जीवस्य भोजनम्"*** अर्थात् एक जीव ही दूसरे जीव का भोजन है। यह बात उन लोगों पर लागू नहीं होती जिन्होंने मोक्ष प्राप्त करना है। योगी न तो हिंसा व पाप करके खाता है तथा न ही यम, नियम का उल्लंघन करके खाता है। योग कहता है कि हमारे विचार भी शुद्ध होने चाहिएं। हमें किसी के प्रति राग द्वेष नहीं रखना चाहिए। हमें अशुद्ध विचारों का त्याग करना चाहिए। आहार, विचार के साथ-साथ हमारा व्यवहार भी ठीक होना चाहिए। हमें किसी के साथ धोखा नहीं करना चाहिए। यह सब चीजें केवल योगी गुरु ही अपने शिष्य को बतलाता है।

****

प्रवचन संख्या-4

भगवान भी कर्मों का फल नहीं बदल सकते

(कोई भी देवता कर्मों के फल को नहीं बदल सकता)

महापुरुषों के जन्म दिन मनाने व धार्मिक सम्मेलनों में भाग लेने का तब तक कोई लाभ नहीं जब तक कि हम महापुरुषों के आदर्शों को नहीं अपनाते व उनके द्वारा दिखाए गए मार्ग पर नहीं चलते हैं। हम महापुरुषों व अवतारों के जन्मोत्सव मनाते समय कई बार ऐसे कर्म भी करते हैं जो धर्म के विपरीत होते हैं। इन अवसरों पर पशुओं का वध करना कहां तक उचित है? ईश्वर के नियमों को कोई नहीं बदल सकता। कोई भी देवता मनुष्य के कर्मों को पलट नहीं सकता। पापों की सज़ा कोई माफ नहीं करवा सकता। महापुरुषों ने कहा है कि हम जो कहते हैं उस पर चलो जीवन की मंज़िल मिल जाएगी। भगवान शिव जो कि साक्षात ग्रंथ हैं उनकी एक-एक चीज़ से शिक्षा मिलती है। उनके मस्तिष्क से जो गंगा निकलती है वह एक संकेत है। वास्तव में वह शिव संकल्प गंगा है। हमें सबके भले की कामना करनी चाहिए, इससे संसार का वातावरण बदल जाता है। लेकिन दुःख की बात है कि हम अगर एक दो का भला चाहते हैं तो अनेकों का बुरा भी चाहते हैं। शिव के मस्तिष्क पर जो चांद है वह

बुद्धि के उजाले का प्रतीक है। जब हम योग करेंगे तो हमारी बुद्धि में प्रकाश आएगा, इसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं। योग करने से हमारा विचार, चरित्र व व्यवहार अच्छा हो जाता है। भगवान शिव तो कई-कई वर्षों की समाधि लगाते हैं हमारा तो कुछ क्षणों के लिए भी ध्यान नहीं लगता। भगवान शिव के शरीर पर कुछ नहीं होता, वह नग्न रहते हैं लेकिन हमारी आवश्यकताएं इस प्रकार से बढ़ गई हैं कि थमने का नाम ही नहीं लेतीं। इससे शिक्षा मिलती है कि योगी को किसी चीज़ की जरूरत नहीं होती। शिव के शरीर पर लिपटे सांप इस बात का संकेत देते हैं कि उनकी कुण्डलिनी जागृत है।

कोई देवता हमें कुछ नहीं दे सकता, कर्मों का फल ही मिलता है। हमें कर्मों को अच्छा बनाना चाहिए। मांगना एक बुरा कर्म है। गुरु केवल शिक्षा देते हैं। वह हमारे कष्टों में सहायक होते हैं, वह हमें शांति देते हैं। भगवान हमारे कर्मों का फल नहीं बदलते। जो पाप हमने किए उसका फल मिलता ही है। अगर यह मिलना बंद हो जाए तो संसार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। गुरु योग की शिक्षा देते हैं लेकिन हम योग का लाभ नहीं उठाते। इसी लिए हम भटकते रहते हैं।

****

प्रवचन संख्या-5

योग विद्या सबसे श्रेष्ठ

(मन एक चंचल पशु के समान है)

गुरु अपने शिष्यों को योगमय जीवन प्रदान करते हैं, क्योंकि योग विद्या सबसे बड़ी व श्रेष्ठ विद्या है तथा योगी ही सबसे बड़ा इंसान है। योगी का गुण है कि वह यम व नियम की पालना करते हुए अपने को तपस्वी बनाता है। उसकी इंद्रियां अनुशासित होती हैं। वह साधनों द्वारा अपने शरीर को रोगों से मुक्त रखता है। शरीर के बाद मन आता है। शरीर के रोगों की तो गिनती है, लेकिन मन के रोगों की कोई गिनती नहीं है। मन के रोग उसकी वृत्तियां ही हैं। जो इन वृत्तियों को रोक लेता है, वह महान बन जाता है। इसके रोकने के लिए योग के अंदर एक सूत्र है कि इसे ध्यान द्वारा रोका जा सकता है। जो ध्यान वृत्तियों को रोकता है वही ध्यान सफल ध्यान है। अगर ये वृत्तियां न रुकें तो यह दुःख देती हैं। ध्यान का पहला स्वरूप धारणा है। धारणा के अभ्यास से हम ध्यान में जाते हैं। योग दर्शन में लिखा है कि एक स्थान पर अपने चित्त को बांध देने का नाम ही धारणा है। मन एक चंचल पशु के समान है, उसे एक स्थान पर बांध देने से वह स्थिर हो जाता है। जिस

स्थान पर मन को बांधना है वह स्थान कैसा हो इस संबंध में गीता के छठे अध्याय में भगवान ने कहा है कि मनुष्य एक स्थान निश्चित कर ले जो एकांत में हो, वह स्थान ऊंचा-नीचा न हो। फिर उस पर पहले कुशा, फिर मृगशाला, फिर कंबल लगाकर बैठें। यह विधि उन लोगों के लिए है जो जंगलों में बैठकर भक्ति करते हैं। लेकिन गृहस्थी को सुलभ आसन प्राप्त हो जाता है। गीता में लिखा है कि फिर हम आसन का अभ्यास करें। अपना सिर व गर्दन एक सीध में कर सीधा बैठें तथा अपने नाक के ऊपर देखें। इससे कुंडलनी जागृत करने में सहायता मिलती है।

लेकिन इसके लिए अभ्यास की बहुत जरूरत है। यह हठयोग की विधि है। धारणा की एक अन्य विधि भी है। इसके अनुसार हम भृकुटी के अंदर आंखें बंद कर देखते जाएं, इससे भी धारणा हो जाती है। प्रश्न यह है कि वहां देखना क्या है? हम स्थूल, सूक्ष्म व ज्योति कुछ भी देख सकते हैं। इस धारणा की तस्वीर हमें बनानी है। मन प्रत्येक चीज़ की कल्पना कर सकता है। लंबे समय तक धारणा करते-करते यही अभ्यास बन जाता है। इसके अतिरिक्त भक्ति योग द्वारा भी मन एकाग्र किया जा सकता है। इसमें हमने अपने विचारों को भगवान में लगाना होता है। जब मन व बुद्धि भगवान में

टिकते हैं तो ध्यान बन जाता है। इस ध्यान के लिए सदा आसन ज़रूरी नहीं है। क्योंकि ध्यान मन का काम है, शरीर का नहीं। जब हम विषयों के प्रति सोचते हैं तो उनसे हमारा लगाव हो जाता है। इससे हम में काम की उत्पत्ति होती है। काम से मोह व मोह से क्रोध पैदा होता है जिससे हमारी स्मरण शक्ति जाती रहती है। इससे बुद्धि का नाश होता है। दूसरी तरफ जब हम भगवान के स्वरूप में मन एकाग्र करते हैं तो हमें मोक्ष की प्राप्ति होती है।

****

प्रवचन संख्या-6

तामसिक भक्ति करने वालों को नरक मिलता है

(दुःखों का मूल कारण पाप है)

मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। ईश्वर जब मानव को संसार में भेजता है तो वह उसका लक्ष्य भी निर्धारित कर देता है। लेकिन हम अज्ञानी लोग संसार में आकर अपने लक्ष्य को भूल जाते हैं। भगवान 84 लाख योनियों में से सर्वश्रेष्ठ योनि मनुष्य को, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बुद्धि, मन व शरीर देते हैं। वह कहते हैं कि इन तीनों चीजों के साथ योगी गुरु की शरण में जाओ। योगी गुरु तुम्हें मुक्ति मार्ग की तरफ अग्रसर करेंगे। योगी गुरु बतलाते हैं कि चूंकि शरीर मोक्ष प्राप्ति का साधन है इसलिए योग के साधनों द्वारा इसको स्वस्थ रखो। भगवान ने जो बुद्धि दी है उसमें ज्ञान भरो। गुरु के उपदेशों को धारण कर उसे विकसित करो। इस बुद्धि के द्वारा तुम सृष्टि के नियमों को, ईश्वर को, मोक्ष को व हानि लाभ को समझ सकते हो। और अपनी बुद्धि का प्रयोग करो तथा मन को राग, द्वेष व संसार की माया से रहित रख कर प्रभु का ध्यान करो क्योंकि अंत में हमें उसी प्रभु के पास जाना है।

गीता में भगवान ने कहा है कि मन व बुद्धि मेरे में लगा दो मोक्ष मिल जाएगा। इसलिए मोक्ष साधन के लिए अभ्यास की दो धाराएं हैं। शरीर के लिए हठयोग की धारा व मन के लिए राजयोग की धारा। जब यह धाराएं मिल जाती हैं तो प्रकाश पैदा होता है। यह प्रकाश ही ज्ञान है, इसी से मोक्ष है। भगवान हर जगह है लेकिन भक्ति के बिना उसे कोई पाता नहीं। भक्ति भी तीन प्रकार की होती है। कुछ लोग तामसिक भक्ति करते हैं, इससे उन्हें नरक मिलता है। क्योंकि यह भक्ति किसी को नुकसान पहुंचाने के लिए की जाती है। दूसरी भक्ति राजसिक भक्ति है जो इच्छाओं की पूर्ति के लिए की जाती है। यह भक्ति जन्म जन्मांतरण के चक्र में डाल देती है। तीसरी भक्ति सात्विक भक्ति है, इसमें केवल निष्काम भक्ति होती है। यही भक्ति मोक्ष देती है।

****

प्रवचन संख्या-7

योग के संस्कार ही भविष्य जीवन का आधार

आज संसार में अधर्म का बोल बाला है। इसका कारण यह है कि आज लोगों में धर्म के प्रति निष्ठा कम हो रही है। आज धर्म को माया में नापा जाता है। सबसे बड़ा धर्मात्मा उसे मानते हैं जो मंदिरों के लिए अधिक दान देता है। लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म की परिभाषा बदल दी है। धर्म के लक्षण क्या हैं? हम इस बारे में अनभिज्ञ हैं। योग के पांच यम व पांच नियम ही धर्म के लक्षण हैं। लेकिन आज तो सत्य को भी बेचा जाता है। भगवान ने धर्म को बचाने के लिए ही योग दिया है। हमें योगी गुरु के प्रति जब तक निष्ठा न होगी तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकता। वही हमें धर्म का मार्गदर्शन करवाता है। लेकिन दु:ख की बात है कि आज कई लोग गुरु से शिक्षा ग्रहण करने की बजाए उसके दोष निकालने लगते हैं। गुरु की निंदा करते हैं, योग की निंदा करते हैं। ऐसे लोगों का कल्याण कैसे संभव है? वे लोग भाग्यशाली हैं, जिन्हें योग आश्रमों में गुरु के पास जाने का अवसर मिलता है। योग तो न केवल भारत वर्ष में बल्कि विदेशी लोगों में भी

लोकप्रिय हो रहा है। योग विद्या द्वारा हम अपनी प्राचीन संस्कृति से संबंध जोड़ सकते हैं। योग द्वारा ही देश व धर्म के प्रति कर्त्तव्य की पहचान हो सकती है। हमें अपने बच्चों में योग के संस्कार डालने चाहिएं क्योंकि जिस विचार का बीज उनके मन में डाला जाएगा वही भविष्य में वृक्ष बन जाएगा। दु:ख की बात है कि आज बच्चों को उलटे संस्कार दिए जाते हैं। इसके कारण वे जीवन में कई प्रकार की गलतियां करते हैं। आज कई लोग योग सिखाने का दावा करते हैं लेकिन उन्हें स्वयं भी पूरा योग नहीं आता। यम-नियमों के बिना योग शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

****

प्रवचन संख्या-8

बहिर्मुखी मनुष्य का जीवन पशु समान होता है

जब तक मनुष्य बहिर्मुखी रहेगा उसका जीवन पशु समान ही रहेगा। केवल मनुष्य ही अंतर्मुखी हो सकता है तथा यह केवल साधना व अभ्यास द्वारा ही संभव है। अगर हमने ध्यान व धारणा करनी है तो भगवान के स्वरूप को मन में बसा कर रखना होगा। अगर मन एकाग्र हो जाता है तो प्राण भगवान में लीन होने लगते हैं। मन व बुद्धि चित्त का स्वरूप हैं। यह ठीक हो जाए तो काम बन जाता है। मन जब इधर-उधर भटकना बंद कर टिक जाता है तो उसके दोष समाप्त हो जाते हैं। हम संसार में क्यों आए हैं? क्या करने आए हैं? ये प्रश्न सदा बने रहते हैं। इनका उत्तर इसलिए नहीं मिलता क्योंकि मन के आगे एक आवरण है। अगर इस आवरण से मुक्ति प्राप्त करनी है तो इसका एक साधन है कि हम गुरु के बताए मार्ग पर चलें व ध्यान में बैठें। अगर हमने अपना कल्याण करना है तो कुछ मंज़िलें ऐसी हैं जिन्हें 'ध्यान' से प्राप्त कर सबसे ऊपर की मंज़िल पर पहुंचना होगा। ध्यान की पहली सीढ़ी शुभेच्छा है। दूसरी सीढ़ी विचारणा है। हमें इच्छाओं को बुद्धि की छलनी से

छान कर मायावी इच्छाओं का त्याग करना चाहिए। केवल आत्म कल्याण वाली इच्छाएं रखें। ध्यान की तीसरी सीढ़ी तनुमानसी प्रवृत्ति है तथा चौथी सीढ़ी का नाम सत्वापत्ति है। इसमें हमारा मन संसार की माया से हट जाता है। अभियंतर योग में हम आत्मा का साक्षात करते हैं लेकिन केवल आत्म दर्शन हो जाने पर मुक्ति नहीं हो जाती। ध्यान की पांचवी सीढ़ी असंसक्ति है। संसार के पदार्थों के प्रति मोह नहीं रहता। जगत के पदार्थ शून्य लगते हैं। मन सुबह-शाम आत्मा में लीन रहता है। सांसारिक पदार्थों से मोह छूट जाना ही पदार्थाभावना है जो छठी सीढ़ी है। सातवीं सीढ़ी तुर्यगा है जो सीढ़ियों में सबसे ऊंची अवस्था है। इस से मुक्ति की प्राप्ति होती है। संसार में रहकर योग करने वाले बहादुर होते हैं। उपरोक्त सीढ़ियां चढ़ना मुश्किल है लेकिन गुरु कृपा द्वारा सब कुछ संभव है।

****

प्रवचन संख्या-9

इधर-उधर भागने वालों को मंज़िल नहीं मिलती

(भगवान अपने भक्त का कभी अनिष्ट नहीं होने देते)

अगर दुराचारी व्यक्ति भी अनन्य भाव से भगवान की भक्ति करने लग पड़ता है तो भगवान उसे भी भवसागर से पार उतार देते हैं। भगवान अपने भक्त का कभी नाश नहीं होने देते। लेकिन इसके लिए उन्होंने कुछ नियम भी बनाए हैं। अगर हम उन नियमों का पालन करेंगे तभी भगवान हमारी रक्षा करेंगे। भगवान कहते हैं कि तुम्हें सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आना होगा। जो व्यक्ति संसार में इधर-उधर भागते रहते हैं वे भटक जाते हैं। उन्हें उनकी मंजिल नहीं मिलती। ऐसे लोगों को मुक्ति नहीं मिलती। हमारा मन अनेकों प्रकार की चिंताओं में डूबा रहता है। इसी प्रकार बुद्धि में अनेकों तर्क-वितर्क आते रहते हैं। हमें अपने मन में प्रभु का चित्र बना कर उसकी अनन्य भाव से पूजा करनी चाहिए। ऐसा यत्न करना चाहिए कि हम संसार के कार्य करते हुए भी संसार से विमुक्त रहें। इसी प्रकार बुद्धि को भगवान में लगाने के लिए स्वाध्याय करना चाहिए। भगवान कहते हैं कि आप जो

भी कर्म करें, उसे मेरे अर्पण करें, उसका जो भी फल मिले उससे खुश रहो। आप जो भी खानपान करो, उसे भी मेरे अर्पण करें। इस प्रकार वर्जित खाना नहीं खा सकोगे। भगवान कहते हैं कि आप जो भी यज्ञ करते हैं उसे भी मेरे अर्पण करें। अगर हम इन नियमों पर चलेंगे तो हमें प्रभु कृपा अवश्य मिलेगी। हमारा कल्याण ज़रूर होगा। प्रभु स्वरूप में ध्यान लगाना चाहिए। हमारी आत्मा उसी परमात्मा का एक अंश है। जब एक आत्मा दूसरी आत्मा को अपने समान समझेगी तो बुरा कर्म होगा ही नहीं।

****

प्रवचन संख्या-10

योग के माध्यम से दु:खों से मुक्ति पाई जा सकती है

(ध्यान से पहले धारणा आती है)

हम सभी दु:खों से छुटकारा पाना चाहते हैं। योग द्वारा ही दु:खों से पूरी तरह से मुक्ति पाई जा सकती है। योग के अंदर सुख प्राप्ति के लिए दो मार्ग बताए गए हैं। एक भक्ति तथा दूसरा शक्ति। अगर हम दोनों के भावों को जानकर इनके लिए प्रयत्न करें तो हमें स्थायी सुख की प्राप्ति हो सकती है। योग के अंदर ईश्वर अर्थात् इष्ट के साथ संबंध जोड़ने को ही भक्ति कहा जाता है। हमें मन से भक्ति करनी चाहिए। बाहरी भक्ति से सुख प्राप्त नहीं होता। मन में ईश्वर की आराधना करने को धारणा कहते हैं। धारणा से पहले प्रत्याहार आता है। जब हमारी 10 इन्द्रियों का निग्रह होता है तभी जाकर भक्ति के लिए सामग्री जुटती है। इसी द्वारा हम अभियंतर भक्ति की तरफ बढ़ते हैं। मन के भीतर एक इष्ट होना चाहिए। दूसरे इष्ट का साया पड़ने मात्र से भक्ति खण्डित हो जाती है। सुख का दूसरा आधार शक्ति है। बिना शक्ति के आप भक्ति नहीं कर सकते। भक्ति व शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों को केवल

योग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। योग ही हमारे शरीर को निरोग बनाता है। योग द्वारा ही शरीर में शक्ति आती है। रोगी शरीर भगवान का भजन नहीं कर सकता।

आज कुछ लोग कहते हैं कि वह योग के साधन भी करते हैं लेकिन फिर भी उन्हें बीमारी लग जाती है। इसमें योग का दोष नहीं है। योग के कई साधन हैं हमें उन सभी को गुरु से शिक्षा लेकर करना चाहिए। योग की वारिसार क्रिया द्वारा पुराने ज्वर, गठिया, मधुमेह आदि रोग भी ठीक हो जाते हैं। हमें औषधियों की तरफ भागने की बजाए योग के साधन करने चाहिएं।

****

प्रवचन संख्या-11

संस्कार ही हमें गुरु की शरण में लाते हैं

(योग का दूसरा नाम ही पुरुषार्थ)

मनुष्य जीवन कर्म क्षेत्र है। केवल मनुष्य ही कर्म करता है, जबकि बाकी जीव केवल अपना-अपना भोग प्राप्त करते हैं। हम इच्छा लेकर कर्म करते हैं लेकिन उसका परिणाम स्थायी नहीं होता। धन, यश व परिवार की प्राप्ति स्थायी नहीं होती। समय बीतने पर यह भी हमारा साथ छोड़ जाते हैं। योग हमारा साथ नहीं छोड़ता। यह इस जन्म में ही नहीं बल्कि अगले जन्म में भी हमारा साथ देता है। योग का प्रभाव हमारे अंत:करण पर होता है। हम भगवान का जो ध्यान करते हैं वह हमारे मन पर जम जाता है। मानसिक साधना हमारे साथ जाती है। योग के अंदर इसी चीज़ को समाधि कहते हैं अर्थात् जो चीज़ आगे जाकर हमें सुख प्रदान करे। हम सभी चाहते हैं कि हमारा ध्यान लगे। आरम्भ में ही ध्यान लगना हमारे पिछले जन्म के संस्कारों पर आश्रित होता है और हमें गुरु की शरण में हमारे संस्कार ही ले जाते हैं। जिन लोगों को शरीर की बजाए भगवान से प्रेम होता है उनकी समाधि शीघ्र लग जाती है। अगर हमने पूर्व जन्म में योग नहीं किया तो हमें इस जन्म

में अवश्य करना चाहिए। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि जो योग करते हैं, योग उनके साथ जाता है। उन्हें पूर्ण सद्गुरु मिलते हैं। योगाभ्यास का दूसरा नाम ही पुरुषार्थ है। आत्मा के उद्धार के लिए जो काम किया जाता है उसे पुरुषार्थ कहते हैं। इसके लिए यत्न करना होता है। हम जिस का ध्यान करते हैं वह हमारा इष्ट होता है।

इष्ट में हम इतने लीन हो जाएं कि हमें अपने स्वरूप, समय व स्थान का बोध न रहे। ऐसा या तो प्रभु कृपा से होता है या फिर अभ्यास से। समाधि में जाने से पहले ध्यान की ज़रूरत होती है। ध्यान में मन की वृत्ति एक धारा रूप में चलनी चाहिए। ध्यान के लिए एक इष्ट चाहिए। हमें एक इष्ट को स्वीकारना होता है। मन को इष्ट से बांधना होता है। इष्ट के बिना ध्यान समाधि में नहीं जाया जा सकता। इष्ट कहां से मिलता है? मन अपना इष्ट स्वयं निर्धारित नहीं करता। इष्ट की प्राप्ति गुरु से होती है। मन चाहे चंचल रहे लेकिन वह सदा इष्ट के समीप ही रहना चाहिए। गीता में भगवान ने कहा है कि अर्जुन तुम्हारा मन जहां भी जाए उसे खींच कर वापिस लाओ। ऐसी विधि गुरु ही सिखलाता है।

****

प्रवचन संख्या-12

योगी भगवान का स्वरूप बन जाता है

(शरीर, मन व वाणी की साधना ही असली तप है)

योगी व्यक्ति भगवान का स्वरूप बन जाता है। योग की महिमा का शास्त्रों के अंदर विस्तृत व्याख्यान है। गीता में भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अर्जुन तुम योगी बनो, क्योंकि जितने भी अन्य कर्म हैं उनसे योग बड़ा है। तपस्वियों, ज्ञानियों व कर्मकांडियों से योगी बड़ा होता है। योग हमारी प्रत्येक परिस्थिति में सहायता करता है चाहे वह गृहस्थ हो अथवा युद्ध का मैदान। योग लोक व परलोक दोनों में मनुष्य के लिए कल्याणकारी है। तपस्वी लोग अग्नि जलाकर अथवा ठंडे जल में बैठ कर किसी उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास करते हैं। कुछ ज्ञानियों का अनुभव भी बहिर्मुखी होता है। जब कि योग का लक्ष्य मोक्ष है। योगी अपनी आत्मा को पहचान लेता है। भगवान कहते हैं कि अगर तप करना है तो वास्तविक तप करो। शरीर, मन व वाणी की साधना ही असली तप है। शारीरिक तप के अंतर्गत, देव, द्विज, गुरु व प्राज्ञ का पूजन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा अहिंसा के नियम का पालन करते हुए सरल जीवन व्यतीत करना

चाहिए। मानसिक तप के अंतर्गत मन को राग-द्वेष आदि से मुक्त रखना चाहिए। मन मननशील होना चाहिए। हमारे भाव शुद्ध होने चाहिए। वाणी के तप के अंदर हमें स्वाध्याय के नियम का पालन करना चाहिए और वाणी सत्य तथा मधुर होनी चाहिए। इसी प्रकार जो व्यक्ति कर्मकांड अर्थात् यज्ञ आदि करते हैं उनका प्रयोजन स्वर्गादि की प्राप्ति होता है। लेकिन योग का प्रयोजन ईश्वर प्राप्ति होता है। गीता में भगवान कहते हैं कि तुम जो भी कर्म करते हो, करते चले जाओ, यही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। यह यज्ञ तभी बनेगा जब तुम इसका फल मेरे पर छोड़ दोगे। इस प्रकार असली ज्ञान भगवान को पहचानने में है। भगवान कहते हैं कि मैं सबके हृदय में हूँ, अंत में भी मैं ही हूँ। भगवान व व्यक्ति के मध्य माया की दीवार है उसे गिराना चाहिए तभी हम ईश्वर के प्रति समर्पित होकर उसे प्राप्त कर सकेंगे।

****

प्रवचन संख्या-13

योग से ही जीवन का विकास संभव

(यदि मन शुद्ध होगा तो उसे एकाग्र होने में सहायता मिलेगी)

योग द्वारा ही जीवन का संपूर्ण विकास किया जा सकता है। जीवन के तीन पहलू हैं - भौतिक जीवन, दैवी जीवन और आध्यात्मिक जीवन। भौतिक जीवन में हमारे शरीर व शरीर से जुड़े पदार्थ होते हैं। हमने संसार में इन्हीं से उन्नति करनी होती है। शरीर इसका मुख्य आधार है। इसको स्वस्थ कर हमने दीर्घायु होना होता है। इसके लिए योग के अंदर हठयोग के साधन बतलाए गए हैं। शरीर पहले है, पदार्थ बाद में, लेकिन हम इस क्रम को उलट देते हैं। पदार्थ तो शरीर के सेवक हैं। दूसरा पक्ष दैविक पक्ष है। इसमें वह देवता आते हैं जो हमारे अंदर रहते हैं। हमारी दस इन्द्रियां दैवी शक्तियां ही हैं। इनका संबंध मन के साथ व मन का संबंध बुद्धि के साथ है। मन व बुद्धि का हमने विकास करना है। मन के विकास के साथ हमारे अंदर बहुत सी सिद्धियां आ जाती हैं। योग कहता है कि मन को शुद्ध करो, उसके दोषों को दूर कर उसे एकाग्र करो। शुद्धि के लिए अच्छी संगत करो, क्योंकि संगत का रंग चढ़ता

है। इसके अतिरिक्त हम दूसरों से सहानुभूति रखें, संसार में बुराईयों की उपेक्षा करें। अगर मन शुद्ध होगा तो उसे एकाग्र होने में सहायता मिलेगी। मन चंचल है, उसकी चंचलता दूर करनी होगी। योग में कहा गया है कि मन को बांधने की विधि व धारणा की विधि केवल गुरु ही बतला सकता है।

धारणा आसान काम नहीं है। इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है। यह एक दीर्घ कालीन प्रक्रिया है। धारणा में संशय के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसके लिए श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धा बुद्धि से पैदा होती है। इन्द्रियों का स्वामी मन व मन का स्वामी बुद्धि है। बुद्धि स्थिर होनी चाहिए। आध्यात्मिक विकास में ईश्वर साक्षात्कार करना होता है। आत्मा का विकास आत्मज्ञान से होगा। भगवान ने जब सृष्टि पैदा की तो उसने अविद्या भी दे दी। अगर अविद्या न होती तो संसार न होता। राग-द्वेष तथा अभिनिवेश अविद्या के रूप हैं। इन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-14

अविद्या की शक्तियां मानव को धर्म के मार्ग पर चलने नहीं देतीं

(सभी गृहस्थी सन्यासी बन जाएं तो समाज की मर्यादा समाप्त हो जाएगी)

अविद्या की शक्तियां ही मानव को धर्म के मार्ग पर नहीं चलने देतीं। काम, क्रोध, मोह, लोभ व अहंकार इस अविद्या के साथी हैं। अगर हम इन चीजों से बच कर चलें तो धर्म कायम रह सकेगा। सृष्टि में हमारे ऋषियों ने चार आश्रम बनाए हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास। अपने-अपने स्थान पर इन सबकी उपयोगिता है। अगर सभी गृहस्थी सन्यासी बन जाएं तो संसार की मर्यादा समाप्त हो जाएगी। वैसे भी आजकल सन्यास की पुरानी परिभाषा नहीं चल सकती क्योंकि आजकल जंगल ही कम हो गए हैं। गृहस्थ में रह कर अपने जीवन का अंतिम समय धर्म मार्ग पर चलते व्यतीत करना ही सन्यास है। आजकल गृहस्थ के बाहर भी माया है। इसलिए गृहस्थ छोड़ना हितकर नहीं है। गृहस्थी का कर्त्तव्य है कि अपनी संतान को अच्छे संस्कार देकर उसे पूर्ण मनुष्य बनाए। आज के धर्म, धर्म नहीं हैं, वे केवल मत हैं। इनके

पीछे कोई न कोई स्वार्थ है। ईश्वर की भान्ति धर्म एक है। कई लोग स्वार्थ के लिए लोगों को धर्म के नाम पर बांटते हैं जोकि गलत है। योग धर्म के नियमों को बतलाता है। यम, नियम, सत्य, अहिंसा आदि धर्म के ही नियम हैं। योग शरीर को स्वस्थ रखने के लिए साधन बतलाता है। योग धर्म से ही निकला है। योग ईश्वर के नियमों के पालन पर ज़ोर देता है। ईश्वर ने सृष्टि के साथ-साथ धर्म भी बनाया। अगर ऋषि लोग समाधियों में इन नियमों को न समझते तो योग हम तक न पहुंच पाता। जो संसार को धारण करता है वही धर्म है। कलयुग में लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। वह ईश्वर के नियमों का उलंघन करते हैं। योग उनकी बुद्धि को ठीक रखता है। योग वैदिक काल से चल रहा है। कलयुग में प्रभु रामलाल जी ने योग का पुनः उद्धार किया। आज भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी योग की महत्ता को समझते हुए इसे अपनाया जा रहा है।

****

प्रवचन संख्या-15

शारीरिक व मानसिक सुख केवल योग से ही संभव

(भक्ति भगवान के नाम का नशा है)

हम भगवान के पास सुखी जीवन की इच्छा लेकर ही जाते हैं। शारीरिक, मानसिक व सामाजिक सुख की प्राप्ति केवल योग द्वारा ही संभव है। परिवार की खुशहाली व धन, ऐश्वर्य की प्राप्ति सुख का एक अंग हो सकते हैं लेकिन यह समस्त सुखों के प्रतीक नहीं हैं। समस्त सुखों की प्राप्ति के लिए योग की त्रिवेणी अर्थात् हठयोग की धारा, भक्ति योग की धारा व राजयोग की धारा का पालन करना आवश्यक है। हमारा शरीर, जिसके साथ सुख जुड़ा हुआ है, वह सदा स्वस्थ रहना चाहिए। बिना शरीर के धन का भी कोई लाभ नहीं है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए योग के अंदर हठयोग के साधन बतलाए गए हैं। इन साधनों का अभ्यास कर हम स्वस्थ शरीर की कामना कर सकते हैं। संसार के अंदर सबसे उत्तम सुख शरीर के स्वस्थ रहने में है। शरीर के साथ-साथ मानसिक शांति का होना भी ज़रूरी है। अगर मन के अंदर चिंता व अशांति है, मन दुःखी है तो जीवन का सुख दुर्लभ है। योग के अंदर इसकी प्राप्ति का उपाय भक्ति बतलाया गया है।

भक्ति द्वारा मन को सुखी किया जा सकता है। भक्ति का अर्थ कर्म कांड नहीं है। जो लोग कई-कई घंटों भक्ति करते हैं उनका मन भी सुखी नहीं रहता। भक्ति एक नशा है जिसमें भगवान के नाम का नशा भक्त पर दिन रात चढ़ा रहता है। जब भगवान के किसी एक रूप से हमें प्रेम हो जाता है तो भक्ति होती है। हम अपना काम-काज करते हुए भी भगवान को याद रखते हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि हमारा एक इष्ट हो। जिसके दो इष्ट हो जाते हैं वह डूब जाता है। मीरा की भक्ति परिपक्व थी, वह एक ही धुन में सवार रहती थी कि "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई"। मीरा रानी थी। रानी होते हुए भी उसके अंदर भक्ति थी इसीलिए वह स्वयं में सुखी थी। भक्ति के बिना मानसिक शांति नहीं मिलती। भक्ति आत्मा से भी सूक्ष्म है क्योंकि यह भगवान से हमारा प्रेम है। सामाजिक सुख की प्राप्ति के लिए योग के अंदर राजयोग है। राजयोग यम, नियम की पालना पर ज़ोर देता है। यम नियम योग के आधार हैं। यम पांच हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह। नियम भी पांच हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान। यह योग की पहली सीढ़ी है। जो लोग राजयोग को अपनाते हैं उनका संसार में सत्कार होता है।

****

प्रवचन संख्या-16

योग सभी धर्मों का आधार

(कर्म ही हमारा धर्म है)

धर्म व योग एक ही चीज़ है। कोई भी धर्म योग के नियमों के विरुद्ध नहीं है। योग में राजयोग के अंदर सत्य अहिंसा आदि आते हैं जोकि सभी धर्मों का आधार हैं। प्रभु रामलाल जी ने योग के पुनर्उद्धार हेतु अवतार लिया। वह अनंत कला संपन्न हैं। उनकी शक्ति अपार है। प्राचीन काल में योग लुप्त था। यह जंगलों में चला गया था। कोई विरला व्यक्ति ही योग के बारे में जानता था। यह प्रभु जी की कृपा है कि आज सारा संसार योग को जानता है।

हम लोग सोचते थे कि योग गृहस्थ के लिए नहीं है। यह केवल सन्यासियों के लिए है। प्रभु जी ने योग विद्या को आसान बनाया ताकि लोग इसे अपना सकें। जिस विद्या को लोग ग्रहण नहीं करते वह विद्या धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। हठ योग के सात साधन हैं। उसके अंतर्गत नेति को छोटा बालक भी कर लेता है चाहे वह उसका गुण न भी जानता हो। अब लोग योग के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। योग क्रिया करने पर कोई खर्च भी नहीं आता। कठिन से कठिन क्रियाएं भी

योग आश्रमों में सरलता से करवाई जातीं हैं। गीता के अंदर भगवान ने अर्जुन को भक्ति योग व कर्म योग का ज्ञान दिया है। कर्मयोग कर्म व योग दो शब्दों का मेल है। कर्म ही हमारा धर्म है। कर्म की परिभाषा के संबंध में विद्वान भी संशय में पड़ जाते हैं। अर्जुन भी संशय में पड़ गया था कि वह युद्ध करें अथवा नहीं। ईश्वर ने चार प्रकार के धर्म बनाए हैं - बुद्धि का धर्म, शरीर का धर्म, सामाजिक कर्त्तव्य और सेवा धर्म। इन कर्मों द्वारा हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। भगवान ने हमारे लिए जो कर्म निश्चित किया है वह हमारा धर्म है। इसके पालन में अगर हमारी जान भी चली जाए तो भी हमें मुक्ति मिलेगी। भगवान कहते हैं कि जब कर्म मैंने दिया है तो फल भी मैं ही दूंगा।

वह कहते हैं कि कर्म पर तुम्हारा अधिकार है तुम करो। फल मैं दूंगा। कर्म करते-करते भक्ति हो जाती है। भक्ति मन का काम है शरीर का नहीं। जहां भगवान का नाम आता है वहां ज्ञान स्वत: ही आ जाता है। भगवान को जानने का नाम ही ज्ञान है। कृष्ण ने अर्जुन को इसीलिए कहा था कि तुम कर्म करते जाओ। अगर युद्ध में तुम्हारी विजय हुई तो तुम्हें राज्य मिलेगा। अगर तुम मारे गये तो तुम्हें स्वर्ग मिलेगा।

****

प्रवचन संख्या-17

योग ही है दुःखों का हल

(योग का एक ही साधन कई बीमारियों को दूर कर देता है)

संसार में जब जीव आता है तो वह अपने साथ तीन प्रकार के दुःखों को लाता है। आध्यात्मिक, दैविक व दैहिक। इन तीनों दुःखों से केवल योग द्वारा ही छुटकारा पाया जा सकता है। सारा संसार ही इन तीन दुःखों से पीड़ित है। प्रभु रामलाल जी ने इसके निदान के लिए योग बतलाया है। योग पहले लुप्त हो चुका था। लोग समझते थे कि आध्यात्मिक उन्नति के लिए जंगलों में जाकर समाधि लगानी पड़ती है व मानसिक शांति के लिए जपतप करना होगा। लेकिन शरीर के लिए क्या करना है यह वे नहीं जानते थे। आध्यात्मिक दुःखों का संबंध हमारी आत्मा से है। हमें इस जन्म में यह नहीं पता होता कि हम कौन हैं और कहां से आए हैं। इसके लिए हमें आत्मा का साक्षात्कार अर्थात् समाधि का ज्ञान आवश्यक है। आध्यात्मिक दुःखों के निवारण के लिए जंगलों में जाना ही एकमात्र हल नहीं क्योंकि अगर सभी लोग जंगलों में चले जाएंगे तो संसार का संतुलन बिगड़ जाएगा। योग के अनुसार

गृहस्थ में रहकर भी आध्यात्मिक दु:खों से छुटकारा पाया जा सकता है।

दैविक दु:खों का संबंध मन के साथ है। हमारा मन भटकता है। इसमें चिंताएं रहती हैं। योग के अंदर इसका उपाय है। जब तक मन संसार की चिंताओं में लगा रहेगा, उसे शांति नहीं मिलेगी। शांति के लिए मन का एकाग्र होना ज़रूरी है। इस लिए हमें प्रभु जी के स्वरूप में मन एकाग्र करना चाहिए। यह समाधि का पहला चरण है। आज लोग स्थान-स्थान पर ध्यान के केन्द्र खोलते हैं। कुछ में लाभ भी होता होगा कुछ में नहीं। लेकिन हम प्रयास तो करते हैं। मानसिक शांति के लिए हमें संसार की इच्छाओं का त्याग करना होगा। दैहिक दु:खों से बचने के लिए हमें हठ योग के साधन करने चाहिएं क्योंकि योग में यह गुण है कि एक साधन द्वारा ही मनुष्य के कई रोगों का उपचार हो जाता है। हम योग के साधन षट्कर्म जिनसे शरीर की शुद्धि होती है, आसन जिनसे शरीर में बल आता है और प्राणायाम जिससे शरीर में स्फुर्ति आती है आदि करते रहें।

****

प्रवचन संख्या-18

ऋषि मुनियों की विद्या को पुनः जीवित किया प्रभु रामलाल ने

(राजयोग के साथ हठयोग की भी शिक्षा दी प्रभु रामलाल ने)

आज से सौ वर्ष पूर्व योग विद्या का नगरों में कहीं नाम भी नहीं सुना जाता था, ऐसे अंधकार के काल में योगेश्वर अवतारी प्रभु रामलाल जी ने ऋषि-मुनियों की योग विद्या का प्रसार करने के लिए जगत में अवतार लिया। योगेश्वर प्रभु रामलाल जी का जन्म अमृतसर में संवत् 1945 विक्रमी चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पति वार इष्ट 6 घड़ी 56 पल वृषभ लग्न में (तदनुसार ईस्वी सन् 21 मार्च 1888) ब्राह्मण कुल में हुआ। आपके पिता जी का नाम पंडित गंडाराम व माता जी का नाम श्रीमती भागवंती था।

श्री रामलाल जी बचपन से ही महान ईश्वर भक्त, साधु सेवी और विद्या प्रेमी थे। साधु महात्माओं का सत्संग करने व दर्शन करने आप दूर-दूर चले जाते थे। प्रभु रामलाल जी के पिता पंडित गंडाराम जी पंजाब के अति प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उन्हें अपनी ज्योतिष विद्या द्वारा पहले से ही बालक रामलाल

के योग अवतारी होने का आभास हो गया था। अत: वह सतर्क रहने लगे कि कहीं उनका बालक विरक्त होकर घर न छोड़ दे। रामलाल की आयु अभी केवल तीन वर्ष की थी कि उनके पड़ोस में एक वृद्धा बहुत बीमार हो गई। उसे मरणासन्न जान कर घर वालों ने भूमि के ऊपर लिटा दिया। जब वह अंतिम श्वासों पर थी तो उसे एक विशेष अनुभूति हुई। उसे बालक रामलाल के दिव्य रूप के दर्शन हुए। उसने घर वालों को बालक रामलाल को दर्शनार्थ लाने के लिए कहा। वृद्धा की यह अंतिम अभिलाषा जानकर रामलाल को उसके समक्ष उठाकर लाया गया। बुढ़िया माता ने श्रद्धापूर्वक रामलाल के दर्शन किए और दर्शन मात्र से ही वह स्वस्थ हो कर उठ खड़ी हुई। इस अलौकिक दिव्य लीला का सभी पर विलक्षण प्रभाव पड़ा। रामलाल जी विद्या पढ़ने के लिए कनखल, काशी, कुरुक्षेत्र आदि कई स्थानों पर गए परन्तु बहुत विद्या ग्रहण कर चुकने पर भी उन्हें संतुष्टि न हुई। वे अनुभवी योगी सद्गुरु की खोज में रहने लगे। माता-पिता ने श्री रामलाल के इस विरक्त भाव को देख इनका विवाह पन्द्रह वर्ष की आयु में कर दिया। पत्नी का पैत्रिक नाम बाल कौर था और विवाह के बाद ससुराल में उनका नाम सुभद्रा हुआ। परन्तु विवाह इनके वैराग्य और सद्गुरु की खोज में बाधक न बन सका। विवाह उपरांत

भी वे योगी सद्गुरु की खोज निरंतर करते रहे। जब श्री रामलाल जी की आयु बीस वर्ष की हुई तो उनके पिता का देहावसान हो गया। उस समय उनके वैराग्य ने उत्कट रूप धारण किया और अपनी पत्नी व भाई बंधुओं को बतलाए बिना वे घर से निकल गए। अनुभवी योगी सद्गुरु की खोज में श्री रामलाल ने महान कष्ट सहन किए। सर्वप्रथम वे हरिद्वार, ऋषिकेश, ब्रह्मपुरी, वशिष्ट गुफा और उत्तर काशी की ओर वनों में पधारे। कई महात्माओं से मिले व सत्संग किया परन्तु सद्गुरु प्राप्ति न हुई। श्री रामलाल जी का विश्वास था कि पूर्ण सद्गुरु की खोज जीवन की सर्वोत्तम साधना है। सद्गुरु की खोज में पहले वह उत्तर काशी, मुरादाबाद, मथुरा आदि स्थानों पर गए परन्तु सफलता न मिलने पर उन्होंने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और कुछ शिष्यों सहित नर्बदा नदी के तट की यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने हरिहरानंद को शरण में लेकर उसे समाधि का दान दिया। इसके उपरान्त बहुत खोज करते-करते उन्हें नेपाल से होकर आगे जंगलों में जाने का अवसर मिला जहां पर उनका साक्षात्कार शीघ्रतः ही महाप्रभु से हुआ। उन्होंने रामलाल जी को ढ़ाई वर्ष तक अपने पास रख कर योग की शिक्षा दी और पूर्ण सिद्ध बनाकर आज्ञा दी कि तुम्हारा अवतार संसार में योग विस्तार के लिए हुआ है।

अब तुम बस्ती में जाकर योग द्वारा जनता का कल्याण करो। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रभु रामलाल अपने पैतृक स्थान अमृतसर में आये और योग साधन आश्रमों की रचना की। आज इन आश्रमों द्वारा देश-विदेश में योग की शिक्षा दी जा रही है तथा असंख्य लोगों को इस द्वारा लाभ पहुंच रहा है।

****

प्रवचन संख्या-19

योग ही मानव संस्कृति का आधार है

काक भुषुंडी ऋषि ने काक नाड़ी ग्रंथ में प्रभु रामलाल जी के योगावतार होने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि वह सर्वव्यापक हैं व अपनी शक्ति से अपना कार्य करवा रहे हैं। प्रभु रामलाल का जन्म भगवान राम के जन्म दिवस के दिन हुआ। दोनों एक ही शक्ति हैं। उन्होंने एक ही कार्य किया। इन दोनों ने आर्य व वैदिक संस्कृति का विकास व उद्धार किया। समयानुसार इनके शरीर भिन्न थे। जब भगवान राम ने अवतार लिया था तो संसार में ऐसी संस्कृति थी जो आर्य संस्कृति से मेल नहीं खाती थी। वह राक्षसी संस्कृति का राज्य था। राम ने उस संस्कृति का नाश किया। आज उस संस्कृति के चिन्ह भी दिखाई नहीं देते। आज भी उसी प्रकार की दूषित संस्कृति फैली है, जिससे सारा संसार आतंकित है। आज पृथ्वी डोल रही है, किसी को भी शांति नहीं है। पृथ्वी को स्थिर करने के लिए प्रभु रामलाल जी योग लाए हैं। योग ही मानव संस्कृति का आधार है। अगर मानव अपना कल्याण चाहता है तो उसे योग को अपनाना होगा। योग को प्रभु जी ने पुनः जागृत किया। योग पहले लुप्त हो चुका था, लोग इसका उपहास करते थे।

आज सारा संसार योग का मान करता है। योग के तीन पहलू प्रभु जी ने हमारे सामने रखे हैं - हठयोग, भक्ति योग व राजयोग। हठयोग से हमारा वर्तमान जीवन सुखी होता है जबकि राजयोग से वर्तमान व भविष्य का जीवन सुखी होता है। भक्तियोग से हमारा अंत:करण सुखी होता है। अगला जीवन उनका बिगड़ता है जो हिंसक हैं, झूठे हैं व अत्याचारी हैं। दूसरों को दु:ख देने वाले का अगला जन्म नहीं सुधर सकता। महापुरुष जब संसार में आते हैं तो क्रांति लाते हैं। प्रभु रामलाल जी योग की क्रांति लाए हैं। हमें उनके प्रति आस्था रखनी चाहिए। इससे मन का स्वरूप बदल जाएगा।

****

प्रवचन संख्या-20

तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग

(देवता, विद्वान, माता-पिता व आचार्य की सेवा ही तप है)

तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है। इसके द्वारा समाधि को प्राप्त किया जा सकता है। लंबे व्रत रखना, जंगलों में जाना अथवा धार्मिक स्थानों पर जाना तप नहीं है। क्योंकि इनके द्वारा जब मनुष्य गर्व करने लग जाता है तो आत्मा का हनन होता है व अहंकार बढ़ता है। जो दूसरे की कमाई खाता है वह पापी है। गीता में लिखा है कि देवता, विद्वानों, माता-पिता व आचार्यों की सेवा करना ही तप है। सेवा करना सबसे कठिन काम है। कठिन काम करना ही तपस्या है। यम, नियम का पालन करना भी तपस्या है। तपस्या का फल तुरंत नहीं मिलता लेकिन मिलता ज़रूर है। स्वाध्याय द्वारा मन एकाग्र होता है व ज्ञान मिलता है। ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता। इसके लिए हमें ऋषिकृत पुस्तकें पढ़नी चाहिएं। हम आज धार्मिक पुस्तकें नहीं पढ़ते जबकि स्वामी दयानंद ने कहा था कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना सभी आर्यों का धर्म है। आज लोगों को वेदों का ज्ञान नहीं है। हमें रामायण, वेद, गीता,

उपनिषद् आदि पढ़ने चाहिएं। इससे हमें ज्ञान प्राप्त होगा व बुद्धि स्थिर होगी। स्वाध्याय द्वारा ईश्वर प्रणिधान स्वतः ही हो जाता है। जो मनुष्य तपस्या करता है भगवान उसे दर्शन भी देते हैं व प्रोत्साहित भी करते हैं। प्रभु रामलाल जी का अवतार योग के उद्धार के लिए हुआ है। उनके अवतार संबंधी महर्षि काक भुषुण्डी ने कुमार नाड़ी ग्रंथ में लिखा है कि कलिकाल में, भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेश, पंजाब राज्य के अमृतसर नगर में, भाग्यशाली पंडित श्री गंडाराम जी की सुधर्म पत्नी, अवतार जाया श्रीमती भागवंती जी के गर्भ से, सतचित्त आनंदमयी, अनादि शक्ति, गुरुओं के गुरु, व प्रभुओं के प्रभु श्री रामलाल जी के, पार्थिव शरीर के रूप में अवतीर्ण होगी। इक्यावन वर्ष की आयु में यह शक्ति अपने पार्थिव देह को त्याग देगी, और मेरू गिरि के, स्वर्ण शिखिर पर, ईश्वरीय अविनाशी, पूर्णता के अभेद रूप में वास करेगी। इसी शक्ति का तीसरा देह, प्राणिमात्र के उद्धार के लिए, कल्पांत तक अनश्वर रहेगा। ये महापुरुष, जगत की आधारभूता, महाशक्ति के अवतार, व सृष्टि स्थिति आदि, महाशक्ति सम्पन्न होंगे। हमें प्रभु पर विश्वास व श्रद्धा रखनी चाहिए और उनके बतलाये मार्ग पर चलना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-21

गुरु पर संशय करने वाला विनाश को प्राप्त होता है

(गुरु हमारे मार्गदर्शक होते हैं)

भगवान संसार में धर्म की स्थापना हेतु अवतार लेकर आते हैं और गुरु मार्गदर्शन करता है। भगवान जब-जब अवतार लेकर आए उन्हें भी गुरु की ज़रूरत पड़ी। प्रभु रामलाल जी संसार में योग की स्थापना हेतु अवतार लेकर आएं हैं। उन्होंने भी महाप्रभु को गुरु धारण किया। उन्होंने अपने भक्तों के सामने योग का लक्ष्य रखा है। हमें योग स्वयं भी करना है व दूसरों को भी करवाना है। योग के मार्ग में हमारा पहला शत्रु आलस्य है। अगर हम इसका मुकाबला नहीं करेंगे तो योग कैसे करेंगे। योग का दूसरा शत्रु प्रमाद है। हम हठयोग के लिए समय नहीं होने का बहाना करते हैं। हमें अपने इस शत्रु पर काबू पाना ही होगा। हमारा तीसरा शत्रु संशय है। यह एक भयंकर शत्रु है। इसका मुकाबला करने में वह व्यक्ति सबसे अधिक कमज़ोर है, जिसके हृदय में गुरु के प्रति संशय है। जो गुरु पर संशय करता है वह विनाश के किनारे पहुंच जाता है। गुरु ही हमारे हितैषी होते हैं। वह हमारा

मार्ग दर्शन करते हैं। शिष्य के भीतर गुरु का डर होना चाहिए। रावण सबसे शक्तिशाली था लेकिन उसे अपने गुरु का भय नहीं था इसलिए उसका नाश हो गया। गुरु पर विश्वास करने से ही व्यक्ति उन्नति कर सकता है। भगवान राम को भी दिव्य शस्त्र उनके गुरु विश्वामित्र ने ही दिए थे। गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर होता है। क्योंकि भगवान नज़र नहीं आते जबकि गुरु सामने होता है। गुरु साकार व भगवान निराकार होता है। इसीलिए योगी गुरु को भगवान माना जाता है।

****

प्रवचन संख्या-22

आत्मा का उद्धार योगमार्ग पर चलकर ही

(मन आत्मा का सबसे बड़ा मित्र)

प्रत्येक व्यक्ति भवसागर से पार होना चाहता है, लेकिन इसके लिए प्रयास कोई-कोई करता है। प्रायः हम सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति की तरफ ध्यान देते हैं। सुख भी मांगते हैं तो सांसारिक। हमें आत्मिक सुख का बोध भी नहीं होता। भगवान कहते हैं कि हमें आत्म उद्धार करना चाहिए इसी में हमारा कल्याण है। केवल योग द्वारा ही हमारा यह कल्याण हो सकता है। आत्मा के उद्धार के बिना सुख नहीं मिलता। आत्मा का उद्धार योग मार्ग पर चलकर किया जा सकता है। मनुष्य कई बार इसके लिए योग से भिन्न मार्ग भी ढूंढते हैं लेकिन उनसे लाभ नहीं होता। तपस्या करने वालों, कर्मकाण्ड करने वालों व शास्त्र पढ़ने वालों से योगी बड़ा है। तपस्वी शरीर को माध्यम बना कर आत्मा का उद्धार चाहते हैं। जबकि योग कहता है कि आत्मा का उद्धार मन को माध्यम बनाकर किया जाता है। मन ही आत्मा का सबसे बड़ा मित्र है। जो लोग लंबे-लंबे व्रत रखते हैं, अग्नि अथवा ठंडे जल में बैठ जाते हैं उनका ध्यान शरीर की तरफ ही रहता है। कई लोग यज्ञ करते

हैं ताकि उन्हें स्वर्ग प्राप्ति हो लेकिन स्वर्ग में जो आत्मा जाएगी वह शुद्ध होनी चाहिए। कर्मकांड आदि बाहरी प्रवृत्तियां हैं। परंतु योग मार्ग सबसे उत्तम मार्ग है। योग कहता है कि चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करो। हम अपना कल्याण चाहते हैं, वास्तविक कल्याण आत्मा का होना है शरीर का नहीं। इसी प्रकार भवसागर से पार भी आत्मा ने होना है, शरीर ने नहीं। व्रत रखना व यज्ञ करना आसान है लेकिन मन अर्थात् चित्त को एकाग्र करना मुश्किल है। मन हवा व समुद्र की लहरों से भी अधिक चंचल है। आज मन ने हमें वश में किया हुआ है। योग कहता है कि जो मन बुरी वृत्तियों में लगा है उसे शुद्ध करना चाहिए। इसलिए पहले मन को बुरी वृत्तियों से निकाल अच्छी वृत्तियों में लगायें। यम, नियमों द्वारा ऐसा किया जा सकता है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य द्वारा वृत्तियों को ठीक किया जा सकता है।

****

प्रवचन संख्या-23

संतोष सभी मानसिक बीमारियों का ईलाज है

(चित्त को शुद्ध करने हेतु संतोष करना अति आवश्यक)

मनुष्य के लिए दो मार्ग हैं, एक है संसार के चक्र में चलते रहना व दूसरा है इस चक्र से मुक्ति प्राप्त करना। पहला मार्ग है कि कर्म करो व उसका फल भोगो। दूसरा नियम यह है कि हम ऐसा जीवन व्यतीत करें कि हमें सांसारिक चक्र से मुक्ति मिल जाए। इसके लिए ज़रूरी है कि हमारा व्यवहार, आहार व विचार ठीक हो। विचारों के अंदर योग की बात आती है। अंतःकरण को शुद्ध रखकर ही विचार ठीक हो सकते हैं। हमारा स्थूल शरीर काम करता है। जो मशीन इसके अंदर काम करती है, वही अंतःकरण है। यह अंतःकरण बहुत शक्तिशाली है। इसके अधीन पांच ज्ञान इन्द्रियां व पांच कर्म इन्द्रियां हैं। इस अंतःकरण के चार अंग हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। मन व चित्त में अंतर होता है। मन संकल्प व विकल्प करता है। समुद्र की लहरों की तरह मन में भी लहरें उठती हैं, जिन्हें हम भक्ति अथवा भजन द्वारा टिकाने का प्रयास करते हैं जबकि चित्त मन से भी परे है। वह समुद्र की

गहराई की तरह है जो लहरों से पहले भी विद्यमान था। योग के अंदर चित्त को साधने के उपाय हैं। इसके लिए योग के नियमों पर चलना होगा। हमें शरीर को हठयोग के साधनों द्वारा स्वस्थ रखना होगा। जो हठयोग नहीं करता वह सदा स्वस्थ नहीं रह सकता। शरीर की शुद्धि के बिना मन भी शुद्ध नहीं होगा तथा हठयोग में षट्कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि की जाती है। अगर हम चाहते हैं कि हमारा चित्त शुद्ध हो तो हमें संतोष करना होगा। इसका संबंध मन व चित्त दोनों से है। अस्वस्थ शरीर संतोष के मार्ग में रुकावट डालता है। संतोष सभी मानसिक बीमारियों का ईलाज है। हमें इन्द्रियों व शरीर के संयम के लिए योग के अनुसार तप भी करना चाहिए ताकि दुःख-सुख, गर्मी-सर्दी आदि में हम एक जैसे रहें। हमें अपनी बुद्धि को शुद्ध करना चाहिए और इसके लिए ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। भक्ति बिना शक्ति नहीं मिलती। योग के पूर्ण अभ्यास के लिए हमें योगी गुरु के चरणों में अपना सब कुछ समर्पित कर देना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-24

फल की इच्छा का त्याग मुक्ति द्वार तक ले जाता है

(योगी गुरु कर्मों के दु:खों को कम कर देते हैं)

कर्म पर हमारा अधिकार है, फल पर नहीं। फल की इच्छा के बिना किया गया कर्म ही हमें मुक्ति के द्वार तक ले जाता है। कर्म को हम छोड़ नहीं सकते तथा कर्म का फल अवश्य मिलता है। इसी अनुसार हमारा जन्म मरण तय होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं। हमारे जन्म जन्मांतरों के जो संस्कार हमारे मन में जमा हैं उन्हें हम संचित कर्म कहते हैं। इन कर्मों की पूंजी में से कुछ कर्म लेकर हमारा जन्म होता है। उन्हें हम प्रारब्ध कर्म कहते हैं। इन कर्मों को हमने भोगना होता है। जो कर्म हम संसार में करते हैं उन्हें हम क्रियमान कर्म कहते हैं। कर्मों का यह चक्र निरंतर चलता रहता है। क्रियमान कर्मों का कुछ भाग फिर से संचित कर्मों में चला जाता है। योगी गुरु शिष्य के कर्मों में लिखी शूली को शूल तो कर सकता है लेकिन कर्म के फल को बिल्कुल मिटाता नहीं है। योगी गुरु शिष्य को अच्छे कर्मों की तरफ लगाता है ताकि वह शुभ अथवा निष्काम कर्म करे। पहले लोग यह कहते थे

कि जिस व्यक्ति की मृत्यु काशी आदि धार्मिक स्थानों पर होती है वह सीधा स्वर्ग लोक पहुंचता है। इससे अभिप्राय यह था कि उस समय काशी आदि में बहुत बड़ी संख्या में महात्मा लोग रहते थे जिनकी संगत में रहकर वह लोग भगवान का भजन करते थे, अच्छे कर्म करते थे उनका मन अंतिम समय में शांत होता था। इसीलिए वह शांत चित्त से प्राण त्यागते थे। आज लोग योग की तरफ ध्यान नहीं देते इसी लिए उनका मन व चित्त दोनों अशांत रहते हैं। वे भगवान का नाम भी किसी विशेष फल प्राप्ति के लिए ही लेते हैं। ऐसा मनुष्य न केवल सारी आयु भटकता रहेगा बल्कि जीवन मरण के चक्र से भी मुक्त नहीं होगा।

****

प्रवचन संख्या-25

राजयोग से मन को प्रबल किया जा सकता है

(योग द्वारा ही संसार में व्याप्त अनाचार को रोका जा सकता है)

पाप व पुण्य के बीच हमेशा ही आसुरी व दैवी शक्तियों के रूप में संघर्ष होता रहा है। भगवान संसार में बढ़ रहे पापों का नाश करने के लिए ही अवतार लेते आए हैं। आसुरी शक्तियां आग का रूप हैं जो संसार को जलाना चाहती हैं, दुःख देना चाहती हैं। इसके विपरीत दैवी शक्तियां जल के समान हैं, जो संसार को बचाना चाहती हैं। प्रश्न यह है कि इन दोनों में विजयी कौन होता है? कोई कहता है कि आग प्रबल है जो सबको जला देती है। लेकिन यह बात गलत है क्योंकि जल तो आग को भी बुझा देता है। लेकिन फिर यह भी तो सही है कि आग जल को सुखा देती है। लेकिन वह जल को नष्ट नहीं कर पाती, जल फिर वाष्पीकरण प्रक्रिया द्वारा बरसता है। इसी तरह आसुरी शक्तियां पुण्य शक्तियों को नष्ट नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार भगवान संसार में व्याप्त अनाचार को समाप्त करने के लिए योग लेकर आए हैं। इस द्वारा हम फिर

से धर्म के मार्ग पर चल सकते हैं। योग के दो रूप हैं हठयोग व राजयोग। हठयोग द्वारा हम शरीर को स्वस्थ रख सकते हैं। शरीर ही धर्म का आधार है। शरीर के बिना हम धर्म नहीं कर सकते, भक्ति नहीं कर सकते तथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। हठयोग के बारे में ऋषियों ने विस्तार पूर्वक ग्रंथों में लिखा है ***"शरीर आद्यम खलु धर्म साधनम्"***। राजयोग द्वारा मन को प्रबल किया जा सकता है। अगर हमारा मन दुर्बल है तो हम कुछ भी नहीं कर सकते। अगर हमने संसार के सुख प्राप्त करने हैं, मुक्ति व मोक्ष प्राप्त करना है तो मन का बलवान होना आवश्यक है। आसुरी आक्रमणकारियों ने हमारे योग के शास्त्रों को नष्ट कर दिया था। फिर श्री प्रभु जी इसे हमारे सामने लाए हैं। मन तब सबल होता है जब हम प्रभु भक्ति करें। शरीर तब सबल होता है जब इसे भोजन और व्यायाम मिले। लेकिन जब शरीर शुद्ध ही नहीं होगा तो यह सबल कैसे होगा? इसे शुद्ध करने के लिए योग में षट्कर्म बताए गए हैं। इसी प्रकार मन की शुद्धि के लिए यम व नियम बताए गए हैं।

****

प्रवचन संख्या-26

योग के बिना मन एकाग्र होना असंभव

(दूसरों के प्रति करुणा मन को शुद्ध करती है)

अशांत मन विक्षिप्त होता है तथा मन का शरीर के साथ गहरा संबंध है जिसे अलग नहीं किया जा सकता। योग में मन को शांत करने के लिए राजयोग बताया गया है लेकिन इसे भी हठयोग से अलग नहीं किया जा सकता। हम अपने लिए अशांति स्वयं ही खरीद लेते है जब हम अपने मन के आगे कई इष्ट रख देते हैं। जिस प्रकार संसार में अनेकों पदार्थ होने के बावजूद हम सब को एक ही समय ग्रहण नहीं कर सकते ठीक उसी तरह भगवान के भी अनेकों स्वरूप हैं लेकिन सभी स्वरूपों को एक साथ मन में धारण नहीं किया जा सकता। हमें एक ही स्वरूप को मन में धारण करके मन एकाग्र करने का प्रयास करना चाहिए। हमारा मन गतिशील है जो हर समय कुछ न कुछ करना चाहता है। जब हम इसे एक स्थान पर टिकाना चाहते हैं तो यह भागने का प्रयास करता है लेकिन जब हम एक इष्ट के अंग प्रत्यंगों का ध्यान करेंगे तो हमारा मन लंबे समय तक उनके स्वरूप में टिका रहेगा। योग के षट्कर्म भी शारीरिक और मानसिक शुद्धि में सहायक होते हैं

इनके बिना मन का एकाग्र होना मुश्किल है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम द्वारा हमारे शरीर में स्फूर्ति आती है। अगर हमारा शरीर ही भारी-भारी होगा तो मन भी भारी नज़र आएगा। हमें आसन को सिद्ध करने का भी अभ्यास करना चाहिए। आसन आरामदायक हो तथा उसमें लंबे समय तक बैठने का हमें अभ्यास होना चाहिए। मन को एकाग्र करने के लिए ज़रूरी है कि इसमें किसी के प्रति ईर्ष्या की भावना भी पैदा न हो। वह दूसरों को सुखी देखकर सुख का अनुभव करे। हमारे मन में मैत्री का गुण होना चाहिए। दूसरों के प्रति करुणा की भावना भी रखने से हम अपने मन को शुद्ध कर सकते हैं। अशुद्ध मन एकाग्र नहीं होता। वह भटकता रहता है। हमें दूसरों के दोषों की उपेक्षा करनी चाहिए। मन को एकाग्र करने का काम लंबे समय का अभ्यास है। जो अभ्यास हमें गुरु करवाते हैं उसके प्रति हमारी श्रद्धा होनी चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-27

आज रावण हमारे शरीर रूपी लंका में रहता है

(पर्वों का महत्व)

पर्व हमारी संस्कृति के स्तम्भ होते हैं, जिनमें संस्कृति का आधार छिपा होता है। हमें त्यौहारों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। दशहरे पर हम रावण का दहन तो करते हैं, लेकिन रावण तो उन दोषों का प्रतीक था जिन्हें हम काम, क्रोध, मोह, लोभ व अहंकार कहते हैं। पहले वह रावण लंका में रहता था लेकिन आज वह हमारे शरीर रूपी लंका में रहता है। हमें अपने अंदर के रावण को भी जलाना होगा। एक वर्ष का पर्व चला जाता है, दूसरे वर्ष का वही पर्व आ जाता है। क्या हम इस बीच में कोई प्रगति करते हैं। हमें अंदर के रावण को जलाना ही होगा। यह हर व्यक्ति के अंदर विद्यमान होता है। हमें अपने दोषों को दूर करना होगा। जिस प्रकार राम के तीर में शक्ति थी उसी तरह प्रभु भक्ति में भी अपार शक्ति है। प्रभु की आराधना से हम अपने दोषों को दूर कर सकते हैं। रावण में एक और दोष था कि उसका गुरु नहीं था। इसलिए वह किसी के अधीन नहीं था, किसी से डरता नहीं था, गलत

कार्य करने से संकोच नहीं करता था। लेकिन भगवान राम के गुरु थे। वे गुरु के अधीन थे। इसीलिए उनका अंत:करण प्रकाशमय था। आज लोग दीपावली पर दीप जलाते हैं लेकिन उस दीपक की तरफ ध्यान नहीं देते जो हमारे अंदर जलना चाहिए। उसके लिए मन की दियासलाई का उपयोग करना चाहिए। अगर वह दीपक हमें दिखाई नहीं देता तो यह हमारे मन व बुद्धि का दोष है। भगवान के चरणों में नतमस्तक होने पर ही हमें आत्मा के प्रकाश का बोध होगा। अंदर का दीपक श्रद्धा के तेल से जलता है। जब तक श्रद्धा का तेल बढ़ता रहेगा इसकी रोशनी भी बढ़ती रहेगी।

****

प्रवचन संख्या-28

श्रद्धा पूर्वक कर्म करने से आत्मा का उद्धार हो सकता है

(संचित कर्म हमारा आधार होते हैं)

श्रद्धा पूर्वक कर्म करने से आत्मा का उद्धार हो सकता है। इसलिए योग में कर्म को प्रधानता दी गयी है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं। संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म व क्रियमान कर्म। यह तीनों कर्म मिल कर ही कल्याण करते हैं। संचित कर्म वे होते हैं जो हमने जन्म जन्मांतर में इकट्ठे किए होते हैं। इन्हीं के आधार पर हमारा जन्म होता है। कोई राजा के घर पैदा होता है तो कोई गरीब के घर पैदा होता है। संचित कर्मों में से प्रारब्ध (कर्मों) का उद्य होता है। संचित कर्म कभी भी समाप्त नहीं होते। वे जन्म मरण रूपी चौरासी के चक्र के आधार हैं। क्रियमान कर्म वे होते हैं जो हम नित्य प्रतिदिन करते हैं। संचित व प्रारब्ध कर्मों पर हमारा वश नहीं होता। क्रियमान कर्म हम अपनी इच्छा अनुसार करते हैं। बिना कर्म किए हमारी प्रगति नहीं होती और इनके बिना हमारा कल्याण भी नहीं हो सकता। ये तीनों कर्म केवल शरीर से ही संबन्धित नहीं हैं उनका संबन्ध मन से भी है। मन और शरीर दोनों

मिलकर कर्म करते हैं। कई लोगों का मन ध्यान में नहीं लगता। और किसी-किसी का आसानी से लग जाता है। यह सब संचित किए गए कर्मों के कारण होता है। यह ज़रूरी नहीं कि हम किसी काम में तत्काल सफल हो जायें लेकिन एक न एक दिन सफलता अवश्य मिलती है। बुद्धि भी कर्म करती है। यह ज्ञान प्राप्त करती है। यह शरीर छोड़ने के बाद भी हमारे साथ जाती है। सूक्ष्म शरीर व्यक्ति के साथ जाता है। इसमें मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार शामिल हैं। हमें ज्ञान द्वारा बुद्धि को अच्छा बनाना चाहिए। इसके लिए स्वाध्याय आवश्यक है।

****

प्रवचन संख्या-29

दिखावटी भक्ति से प्रसन्न नहीं होते भगवान

(भगवान धोखेबाज़ों के पुकारने पर नहीं आते)

हम सब भवसागर से पार होना चाहते हैं, इसीलिए भक्ति करते हैं। लेकिन केवल मानसिक भक्ति करने वाला ही भवसागर से पार होता है। दिखावटी भक्ति से भगवान प्रसन्न नहीं होते। भगवान कहते हैं कि जो मेरे पास आना चाहते हैं, उनमें कुछ विशेषताएं होनी चाहिएं। जो बुरे कर्म करने वाले हैं, वह नीच आत्माएं हैं, वह भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते। अगर हमारे कर्म अच्छे नहीं हैं तो आरती पूजा का भी कोई लाभ नहीं। वेद कहता है कि जो कर्म हमने किए हैं उन्हें स्मरण करो तथा देखो कि कौन से कर्मों के कारण हमें दुःख आता है। योग कहता है कि यम, नियमों का पालन करो। अगर असत्य बोलने वाला यह समझे कि उसे प्रभु प्राप्ति होगी तो यह उसका भ्रम है क्योंकि भगवान धोखे में आने वाले नहीं हैं। धर्मपुत्र युधिष्ठिर को भी छोटा सा असत्य बोलने के कारण नरक जाना पड़ा था। ऋषि मुनियों की पवित्र धरती पर आज लोग भ्रष्ट होते जा रहे हैं। पाप कर्म कर रहे हैं। मूर्ख ही पाप

करता है, ज्ञानी को तो पता होता है कि पाप का दंड मिलना है। मूर्ख यह नहीं सोचता। वह भगवान से नहीं डरता। वह मूर्ख इसलिए है क्योंकि उसको गुरु से शिक्षा नहीं मिली। गुरु शिष्य को धर्म के विरुद्ध कर्म करने से रोकता है। आज ऐसे गुरु भी कम हैं और शिष्य भी प्रायः गुरुओं की आज्ञा का पालन नहीं करते। गुरु के पास जाकर हम ज्ञान प्राप्त करते हैं लेकिन माया उस ज्ञान को हर ले जाती है। माया के तीन रूप होते हैं। कोई संतान के मोह में फंसकर बुरे कर्म करता है, कोई धन के लोभ में फंसकर व कोई नाम के लोभ में फंसकर बुरे कर्म करता है। जब हम माया से ठगे जाते हैं तो हमारे अंदर आसुरी शक्तियां आ जाती हैं। हमें योग के नियमों पर चलना चाहिए जो पांच हैं। उनमें से यदि किसी एक को भी दृढ़तापूर्वक अपना लें तो बाकी चारों का भी पालन स्वतः ही होने लगता है।

****

प्रवचन संख्या-30

योग ही जीवन को सुखी बनाने का साधन

(जीवन को अच्छा बनाता है योग)

जीवन को अच्छा बनाने का साधन योग ही है। उसके लिए यह जानना ज़रूरी है कि क्या हमारा जीवन सुखी है? क्या हमारा जीवन संपूर्ण जीवन है? क्या हमारा जीवन सार्थक है? इन बातों का रहस्य केवल योग बतलाता है। सुखी जीवन हमारे शरीर से आरम्भ होता है। शरीर तब सुखी होता है जब हम योग के नियमों पर चलते हैं। योग के पांच नियम हैं। जिसका पहला नियम शौच है। जिसके बिना जीवन सुखी नहीं हो सकता। शौच बाहर से आरम्भ होकर अंदर तक चलता है। अगर हम ऐसे स्थान पर रहते हैं जो साफ नहीं तो हमारा जीवन सुखी कैसे होगा? अगर हम चाहते हैं कि हमारा जीवन सुखी रहे तो हमें शुद्ध जल, शुद्ध वायु व शुद्ध धूप का ध्यान रखना होगा। हम आज शुद्ध जल की बजाए दूसरा जल पीना पसंद करते हैं। हम बीमार को ऑक्सीजन का सिलेंडर लगाते हैं लेकिन आकाश की हवा से ऑक्सीजन क्यों नहीं लेते। इसी प्रकार यंत्रों के प्रयोग की बजाए धूप की ऊष्मती लेनी चाहिए।

शरीर की सफाई के लिए हमें वमन क्रिया, जल नेति, रबड़ व सूत्र नेति करनी चाहिए। जीह्वा को साफ न करने से जुबान का रस नहीं निकलेगा। आंतों को साफ रखना चाहिए। ये बातें केवल आश्रम में ही योग द्वारा सिखलाई जाती हैं। योग का दूसरा नियम संतोष, मन की शुद्धि के लिए है। माया शरीर की बजाए मन को लगती है। माया मन का मैल है। यह जीव को दु:खी करती है। इसके लिए हमें जो प्राप्त हो उसी से संतुष्ट रहना चाहिए। संतोष सभी मानसिक बीमारियों का ईलाज है। योग का तीसरा नियम तप हमारे शरीर व उसकी इन्द्रियों का संयम है। गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास, दु:ख-सुख दोनों अवस्थाओं में एक समान रहना ही तप है। इन्द्रियों की लगाम मन के पास होती है। मन की लगाम बुद्धि के पास होती है। बुद्धि मन को काबू करे। मन इन्द्रियों को काबू करे तो काम बन जाता है। योग का चौथा नियम स्वाध्याय है। इसके लिए हमें शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। बुद्धि में ज्ञान भरना व बुद्धि को शुद्ध करना ही स्वाध्याय है। मुक्ति के लिए भक्ति करनी चाहिए। भक्ति में ध्याता, ध्यान व ध्येय है। ध्याता है ध्यान करने वाला, ध्यान है बुद्धि तथा ध्येय है भगवान। इसकी शिक्षा देने वाले गुरु हैं। गुरु एक इष्ट देता है कि इसका ध्यान करो। गुरु भक्ति

का ठीक मार्ग बतलाते हैं। गुरु के चरणों में सभी तीर्थ हैं। उसी के चरणों में सभी शक्तियां हैं। हमें अपने इष्ट में अटल विश्वास रखना चाहिए। यही योग का पांचवा नियम ईश्वर प्रणिधान है। अगर हम इन नियमों का पालन करें तो हमारा जीवन न केवल सुखी होगा, बल्कि संपूर्ण व सार्थक भी होगा।

*****

प्रवचन संख्या-31

केवल सांसारिक इच्छा ही पूरी करवाने वाला गुरु हितैषी नहीं होता

(तामसिक लोग दूसरों को नुकसान पहुंचाने के लिए पूजा करते हैं)

जीव की इच्छा भगवान को प्राप्त करने की होती है। जिसके लिए वह गुरु के पास जाता है। यदि गुरु ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर न डालकर उसकी केवल सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति करवाता रहे तो वह गुरु नहीं कहला सकता। जीव ईश्वर का अंश है तथा जीव और प्रकृति दोनों से संसार का निर्माण होता है। प्रकृति आठ प्रकार की है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये प्रकृति के आठ तत्व हैं। प्रकृति जीव को बंधन में डालती है और वह अपने मार्ग से विचलित हो जाता है। गुरु का कर्त्तव्य है कि वह शिष्य को सन्मार्ग पर लगाए।

जीव की इच्छा होती है कि वह अपने असली घर को लौटे, क्योंकि वह भगवान का अंश है। परन्तु प्रकृतियों के जाल से वह निकल नहीं पाता। इन आठ प्रकृतियों का नाम ही माया है। इस माया में हम फंस जाते हैं। इससे निकलना

मुश्किल है। यह माया लुभाने वाली चीज़ है। यह गुणमयी अर्थात् तीन गुणों वाली है। सत्व, रजस और तमस गुणों वाली। तामसिक लोग दूसरों को नुकसान पहुंचाने के लिए ही भगवान की पूजा करते हैं जबकि राजसिक गुणों वाले लोग केवल अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ऐसा करते है व सात्विक लोग दूसरों के कल्याण हेतु यत्न करते हैं। भगवान ने कहा है कि जो शुद्ध हृदय से मेरी पूजा करता है वह मेरे पास आता है। जो भूतों की पूजा करता है वह भूतों के पास जाता है। जो भगवान की शरण में जाता है वह माया से पार हो जाता है। वैराग्य हमें माया के जाल से छुड़ाता है और गुरु की कृपा इसमें सहायक होती है। गुरु भी योगी होना चाहिए तभी वह शिष्य को माया जाल से छुड़ा सकता है। गुरु सब कुछ कर सकता है। परंतु वह माया से स्वयं विरक्त होना चाहिए। वैराग्य को भी दो भागों में बांटा गया है। एक जो चीज़ हमें दिखाई दे रही है उससे मन हट जाए दूसरा जो चीज़ सुनी है उससे भी मन हट जाए। इन सब से मन विरक्त होना चाहिए। इसके लिए अभ्यास करना है। हम केवल उन्हें याद करें जिनकी शरण में गए हैं। गुरु शिष्य को माया के लुभावनेपन से बचाता है। वह शिष्य को गलत मार्ग पर जाने से रोकता है। जो गुरु शिष्य की केवल सांसारिक इच्छा पूरी करता है वह उसका कल्याण नहीं करता बल्कि उसे माया में फंसाता है।

****

प्रवचन संख्या-32

मृत्यु भी योगी के वश में होती है

सबसे पहले योगी लोगों को ही इस बात का पता चलता है कि भगवान अवतार लेकर संसार में आए हैं। भगवान कृष्ण को सबसे पहले भीष्म ने, राम को शबरी ने व प्रभु रामलाल जी को स्वामी मुलखराज जी ने पहचाना। योग दर्शन में बताया गया है कि योग के आठ अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि इसके बाहरी अंग है। जबकि धारणा, ध्यान व समाधि को अंतरंग कहा गया है। योगी के वश में प्रकृति और आत्मा दोनों होते हैं। धारणा, ध्यान, समाधि की जब एकता हो जाती है तो उसे संयम कहा जाता है। मृत्यु भी योगी के वश में होती है। वह जब चाहे अपने प्राण चढ़ा लेता है। समाधि से ही मृत्यु वश में आती है। इससे व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है। तीन गुणों वाली प्रकृति जो कि मानव को बांध कर रखती है उसे कौन पार करता है? इसे केवल वही पार करता है जो भगवान की शरण में जाता है। भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम मेरी शरण में आ जाओ। इसमें "मैं" शब्द, कृष्ण अपने शरीर के लिए नहीं

कहते। वह उस आत्मा को कहते हैं जो सबके हृदय में बसती है। जब व्यक्ति अपनी आत्मा के पास पहुंच जाता है तो वह मुक्त हो जाता है। कलयुग के अवतार प्रभु रामलाल जी हैं। हम सबको उनके बताए योग मार्ग पर चलना चाहिए तभी हमारा जीवन सफल हो सकेगा।

****

प्रवचन संख्या-33

मानव को भगवान द्वारा दी गई संजीवनी विद्या का नाम योग है

(भगवान ने जीव को शरीर, मन व बुद्धि जैसी शक्तियां प्रदान की हैं)

योग एक संजीवनी विद्या है जिसकी साधना के लिए भगवान ने जीव को शरीर, मन व बुद्धि जैसी तीन शक्तियां प्रदान की हैं। इन तीनों का योग द्वारा उचित प्रयोग किया जा सकता है। शरीर को ठीक रखने के लिए हमें प्रतिदिन नेति, वमन, प्राणायाम करना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप हमारी पांच ज्ञान इन्द्रियां व पांच कर्म इन्द्रियां पूरी आयु काम करती रहती हैं। मन अति चंचल है। मन को मार्ग पर लाने का तरीका योग बतलाता है। मन के दो स्वरूप हो सकते हैं - देव व दैत्य। मन को देव बनाकर इस द्वारा भगवान की आराधना करनी चाहिए नहीं तो मन दैत्य बन जाएगा। अच्छे भाव मन में लाने से ही मन देव बनेगा। मन को संभालने के लिए पतंजलि ऋषि ने हमें एक विज्ञान दिया है कि मन की वृत्तियों को रोकना होगा। बिना रोके काम नहीं बनेगा। शरीर को अगर योग द्वारा ठीक नहीं रखेंगे तो वह केवल इसी जन्म में तंग

करेगा। लेकिन अगर मन को नहीं संभालेंगे तो यह अगले जन्म में भी दुखी करेगा। मन वृत्तियों द्वारा अंदर दिन रात काम करता रहता है। वृत्तियां पांच प्रकार की होती हैं। पहली वृत्ति प्रमाण है। हम जो देखते हैं वही प्रमाण है। अगर हम महात्मा को देखेंगे तो मन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। लेकिन अगर डाकुओं को देखेंगे तो मन दैत्य बन जाएगा। मन की दूसरी वृत्ति विपर्यय है जिस में हमारा मन भ्रम में आकर हर चीज़ को उलटा सोचता है जैसे रस्सी को सांप समझ लेना। तीसरी वृत्ति विकल्प में मन नई-नई रचना करता रहता है। कुछ को साकार कर पाता है तो कुछ को नहीं। चौथी वृत्ति स्मृति है जिसमें पहले हुई बातों की मन में याद निरंतर बनी रहती है। इस प्रकार मन हर समय किसी न किसी वृत्ति द्वारा चंचल रहता है। मन में जो विकल्प करते हैं वह अच्छा होना चाहिए। जो कार्य करना हमारी शक्ति से बाहिर है उसकी कल्पना करते रहना आकाश में फूल उगाने के समान होता है। ऐसी कल्पना में हमें नहीं डूबे रहना चाहिए। हमारा मन कभी भी खाली नहीं बैठता। यह निद्रा अवस्था में भी चलता रहता है। अगर हमें अच्छे स्वप्न आएं तो यह हमारा सौभाग्य होगा। इसके लिए हमें रात को अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिए। स्मृति ज्ञान की जननी है। इसे अच्छा बनाने के लिए हमें अच्छी बातों का स्मरण करना

चाहिए। मन के अंदर खज़ाना भरा पड़ा है। उनमें से अच्छी चीजों को तलाशना चाहिए। पतंजलि ने कलिष्ट और अकलिष्ट वृत्तियों के बीच में एक रेखा खींच दी है - कलिष्ट अर्थात् बुरी वृत्तियां जो जीव के लिए हानिकारक हैं और अकलिष्ट वृत्तियां अर्थात् शुद्ध वृत्तियां जिससे जीव को लाभ पहुंचता है। हमें बुद्धि को भी संभालना है। शरीर तथा मन की तरह बुद्धि भी बिगड़ जाती है। जब हम सत्संग करते हैं तभी बुद्धि में ज्ञान बढ़ता है। बुद्धि में कोई भी गलत बात नहीं आनी चाहिए क्योंकि नींबू की एक बूंद भी पूरे दूध को बिगाड़ देती है। इसी तरह एक खराब बात पूरी बुद्धि को खराब कर सकती है। योग तथा गुरु की निन्दा नहीं सुननी चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-34

गृहस्थ आश्रम ही संसार का आधार

गृहस्थ आश्रम ही संसार का आधार है। इसके बिना वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम वालों को भी कठिनाईयों का सामना करना पड़ सकता है। ऋषियों ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास चार आश्रम बनाए हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या ग्रहण करना, गृहस्थ आश्रम में विवाह करके संतान उत्पत्ति करना व आजीविका कमाना व संसार के धन में वृद्धि करना आदि बताया गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम 25 वर्ष व गृहस्थ आश्रम 50 वर्ष की आयु तक के लिए बताया गया है। गृहस्थ जीवन सबसे महत्वपूर्ण है। गृहस्थी का कर्त्तव्य है कि वह अच्छी संतान पैदा करे व उसे सुशिक्षित करे। उसे अपना आहार, आचार व व्यवहार ठीक रखना चाहिए क्योंकि उसकी संतान उसका अनुसरण करती है। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी संतान अच्छे संस्कार ग्रहण करे। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम में तो हमने एक तरफ ही ध्यान देना होता है। लेकिन गृहस्थ आश्रम में हमें कई तरफ ध्यान देना पड़ता है। वानप्रस्थ आश्रम 75 वर्ष की आयु तक व आगे की आयु के लिए सन्यास आश्रम का प्रावधान है।

वानप्रस्थ आश्रम में हमें साधना, स्वाध्याय कर आत्मचिंतन करना चाहिए। आजकल वन कम हो गये हैं इसलिए आदमी जब गृहस्थ अवस्था में आता है तो उसका कर्त्तव्य है कि वह अपने माता-पिता को वानप्रस्थ की सुविधा प्रदान करे ताकि वह भगवान के नाम का सिमरण कर सकें। जिस प्रकार ब्रह्मचर्य अवस्था में मनुष्य गृहस्थ के लिए तैयार होता है उसी प्रकार वह गृहस्थ में वानप्रस्थ की तैयारी कर सकता है। सन्यास आश्रम में हमें आत्म साक्षात करना होता है। सन्यास आश्रम में सब कुछ त्यागने पर ही पूरा लाभ होता है।

****

प्रवचन संख्या-35

मन तथा शरीर के रोगों का निवारण योग से ही संभव

(संतोष से ही मन शांत होता है)

आज जब सारा संसार योग को अपना रहा है, हम इसे ग्रहण करने में संकोच न करें। योग न करने से हमें मानसिक व शारीरिक व्याधियां घेरे रहती हैं। शरीर के रोगों का तो डाक्टर निवारण कर सकते हैं, लेकिन मन के रोगों का निवारण उनके पास नहीं है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मन के रोग हैं जो साधारण रूप में हमेशा चलते रहते हैं। लेकिन जब यह रोग बढ़ जाते हैं तो परेशानी पैदा करते हैं। इनके कारण हमें नींद नहीं आती या बड़बड़ाते रहते हैं क्योंकि रोग मन की गहराईयों में चला जाता है। रोग अधिक बढ़ने पर आदमी पागल भी हो सकता है। मानसिक रोग पूर्व जन्मों के मन पर पड़े प्रभावों का परिणाम भी होते हैं। योग में इसका इलाज संतोष है, लेकिन इसका हमें अभ्यास करना चाहिए। संतोष करते-करते मन शांत होगा। आज की इस भागदौड़ वाली जिंदगी में मानसिक रोगों से ज़रूर बचना चाहिए। इसी प्रकार शरीर के अंदर जब किसी प्रकार का कोई

मल जमा होने लगता है तो वह कई रोग पैदा करता है। इस मल के निकलने का एक मार्ग हमारा नाक है। हमारे सिर में कई मसान हैं। जिनमें से रिस-रिस कर मल नाक में आता है। अगर यह मल दिमाग में रुक जाए तो रसौली भी पैदा कर सकता है। अगर नाक में रुक जाए तो साइनस बन जाता है। आंखों में रुक जाए तो आंखों की रोशनी कम कर देता है तथा उनकी शुद्धि के लिए हर समय आंखों से पानी निकलता रहता है। यदि कान में रुक जाए तो सुनने की शक्ति कम कर देता है। अगर प्रतिदिन नेति नहीं करेंगे तो किसी समय भी ये रोग हो सकते हैं। सूत्र नेति तथा जल नेति से सभी मसान खुल जाते हैं। हमें कम से कम एक घंटा प्रतिदिन योग करना चाहिए। जो व्यक्ति योग नहीं करता वह स्वस्थ नहीं रह सकता। हमारे शरीर को शुद्ध वायु और शुद्ध पानी की भी बहुत ज़रूरत है।

****

प्रवचन संख्या-36

प्रभु भक्ति तामसिक गुणों को समाप्त करती है

(सात्विक गुणों से कल्याण सम्भव)

भगवान ही हमारे जीवन के निर्माता हैं। वह हमें हठयोग द्वारा शरीर को निरोग रखने तथा राजयोग द्वारा भक्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं। इसका अधिक से अधिक लाभ उठाना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। हम जो भी काम करते हैं उसका कोई न कोई उद्देश्य होता है। हठयोग के साधन हम इसलिए करते हैं ताकि हम निरोग रह सकें। इसी प्रकार भक्ति के लिए राजयोग है। भक्ति हमारे अंतःकरण के लिए हैं। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इससे हमारे मन के दोष समाप्त हों। दोषों के दो प्रकार हैं - राजसिक व तामसिक। गीता में भगवान ने लिखा है कि जब मनुष्य में सत्तोगुण प्रधान होता है तो उसका अज्ञान तथा दोष अपने आप दूर हो जाते हैं, उसके अंदर से ज्ञान पैदा होता है। सत्तोगुण ज्ञान का भण्डार है। अगर हमारा ज्ञान सात्विक नहीं, तो ऐसे ज्ञान का कोई लाभ नहीं। राजसिक तथा तामसिक दोष हानिकारक हैं। रजोगुण से लोभ व तमोगुण से प्रमाद व मोह पैदा होता है। अगर लोभ,

मोह, प्रमाद आदि हमारे भीतर बने रहें तो हमारी भक्ति बढ़ नहीं सकती। प्रमाद व मोह प्रभु भक्ति के मार्ग में रुकावट खड़ी करते हैं। इसीलिए हमें इनका त्याग करना चाहिए। तमोगुण अपने आप पैदा होता है। अगर हम केवल दिखावे की भक्ति करें व प्रभु को मन से भुला कर और ही चिंता करेंगे तो तमोगुण हमारे अंदर बने रहेंगे। हमें भक्ति का परिणाम भी देखना चाहिए। भक्ति से हमारे मन का स्वभाव सात्विक हो जाता है। हम जितने भी कर्म करते हैं उनके संस्कार हमारे मन पर पड़ते हैं। जो लोग भगवान की प्रत्येक इच्छा को स्वीकार करते हैं उनकी भगवान के प्रति सात्विक श्रद्धा है। जो लोग भगवान से कुछ न कुछ मांगते रहते हैं उनकी श्रद्धा राजसिक है। हमारी भक्ति निष्काम होनी चाहिए। हमारा भोजन भी सात्विक होना चाहिए तथा दान भी सात्विक। दान तीन प्रकार का होता है। सुपात्र को दिया जाने वाला दान सात्विक दान है। कोई इच्छा रखकर दिया जाने वाला दान राजसिक दान है। तथा कुपात्र को दिया जाने वाला दान तामसिक दान है। हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्वगुण को लाना चाहिए तभी हमारा कल्याण संभव है।

****

प्रवचन संख्या-37

शरीर को रोगमुक्त रखने के लिए योग आवश्यक

(भगवान हमारे सच्चे सहायक हैं)

इस संसार में केवल सद्गुरु ही हमारे सच्चे सहायक हैं। हम संसार में आकर बहुत सी गलतियां करते हैं। इन गलतियों को सद्गुरु ही सुधार सकते हैं। जब हम संसार में आते हैं तो हमें कई प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इनमें से एक हमारा शरीर है जिस पर अनेकों कष्ट आते हैं, जिनका सामना करने के लिए प्रभु जी ने हमें योग के साधन बतलाएं हैं। साधनों द्वारा हम आयु पर्यन्त अपने शरीर को रोग मुक्त रख सकते हैं। इसी प्रकार मन के भीतर भी विकार पैदा होते रहते हैं जिनका कारण हमारी वृत्तियां हैं। वृत्तियां दो प्रकार की होती हैं। कलिष्ट और अकलिष्ट। कलिष्ट वृत्तियां दोष उत्पन्न करती हैं तथा अकलिष्ट दोषों से मुक्त करती हैं। हमारा मन इन वृत्तियों में उलझा रहता है। संसार से अगर हमने पार होना है तो हमें इन कलिष्ट (आसुरी) व अकलिष्ट (दैवी) वृत्तियों का निग्रह करना होगा।

गीता में भगवान ने कहा है कि जो कलिष्ट वृत्तियां हैं वे आसुरी वृत्तियां हैं तथा जो अकलिष्ट वृत्तियां हैं वे दैवी वृत्तियां हैं। अगर हम आसुरी वृत्तियों का मुकाबला नहीं करेंगे तो हमारा पतन हो जाएगा। आसुरी सम्पद् हमें निराश करने वाली हैं जबकि दैवी सम्पद् भवसागर पार करने में हमारी सहायता करती है। यह दोनों शक्तियां हमारे अंदर ही हैं। आसुरी सम्पद् में एक तो धोखा है क्योंकि असुरों का काम ही दूसरों को धोखा देना है तथा दूसरा अहंकार है जिसके तहत हम दूसरों पर अत्याचार करते हैं। अगर हम धोखे व अहंकार को अपने अंदर इकट्ठा करते रहें तो समझो कि हम असुर हैं। इसी प्रकार जो असुर होते हैं वह निर्दयी होते हैं। उनके अंदर अज्ञान होता है। ज्ञानी कभी पाप नहीं करता क्योंकि वह इसके परिणाम को जानता है। लेकिन अज्ञानी को यह पता नहीं होता इसलिए वह पाप करता रहता है। अहिंसा का पालन करना, सब पर दया करना, सत्य बोलना, सबके प्रति स्नेह की भावना रखना, दूसरों के लिए त्याग की वृत्ति होना, क्रोध न करना व दूसरों को क्षमा करना आदि ही दैवी वृत्तियों की निशानी है। हमें इन वृत्तियों को अपने अंदर इकट्ठा करना चाहिए। देवासुर संग्राम तो सदा चलता ही रहेगा। आमतौर पर असुर शीघ्र जीत जाते हैं जैसे मन के अंदर अच्छे विचार देर से फलीभूत होते

हैं जबकि बुरे विचार शीघ्र फलते हैं। हमारा मन वश में भी इसीलिए नहीं होता क्योंकि वह आसुरी वृत्तियों में फंस जाता है। बिना भक्ति के इनसे बचना मुश्किल है। अगर हम भक्ति से दूर चले जाऐंगे तो भवसागर में डूब जायेंगे।

****

प्रवचन संख्या-38

योग में हैं ज्ञान व शक्ति

(योग ज्ञान का भण्डार है)

आज से 50-60 वर्ष पहले योग को मज़ाक समझा जाता था, लेकिन आज इसके प्रति सबको आस्था है। सभी बिना किसी भेदभाव के इसका लाभ उठाना चाहते हैं क्योंकि योग के पीछे भारी ज्ञान व शक्ति है। योग के आसन, मुद्राएं व क्रियाएं शरीर को दुर्बल होने से बचाती हैं। योग के अंदर षट्कर्म हैं जो शरीर के अंग प्रत्यंग को शुद्ध करते हैं। योग का प्राणायाम शरीर में स्फुर्ति पैदा करता है। योग का विस्तार वर्णन केवल योग शास्त्रों में है। योग साधारण ज्ञान नहीं, ऋषियों की विद्या है। इसमें 20 से 22 प्रकार के षट्कर्म 84 लाख के करीब आसन व 10-12 प्रकार के प्राणायाम हैं। इन सब बातों से योग के महत्व का ज्ञान होता है। योग दर्शन के कई विषयों पर अनुसंधान होता रहता है। योग के अंदर ध्यान है जो मन को एकाग्र करने की कला बताता है। आज जगह-जगह पर जब ध्यान के शिविर लगाए जाते हैं तो भारी संख्या में लोग उनमें शामिल होते हैं। योग के सुगम आसनों द्वारा भी हम योग से लाभ उठा सकते हैं। मन चंचल है व बुद्धि धोखा देने वाली

है। मन का काम है मनन करना तथा बुद्धि का काम है चिंतन करना। मन यदि अपनी इच्छा अनुसार चलता रहे तो यह भटकता रहता है। फिर बुद्धि भी भटकेगी। अगर मन व बुद्धि नहीं टिकेंगी तो हमें अशान्ति मिलेगी। गुरु शिष्य का सब कुछ सुधार देते हैं। गुरु मन और बुद्धि को स्थिर करने के साधन बतलाते हैं। गुरु महान हैं। ईश्वर हमें दिखाई नहीं देता जबकि गुरु दिखाई देता है। ईश्वर के दर्शनों के बारे में भ्रांति बनी रहती है। गुरु से बात कर शंका का निवारण किया जा सकता है। निराकार के दर्शन चाहे ब्रह्मा भी कर ले उसे भी शांति नहीं मिलेगी। मन व बुद्धि को एक दूसरे के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहिए। मन को सत्संग, सेवा के द्वारा एकाग्र किया जा सकता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए योग से बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है और मन को स्थिर करने के लिए योग के ध्यान से बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है। मन को गुरु चरणों में टिकाकर मनन करने से ही मन शांत होगा। हमें गुरु पर पूर्ण विश्वास व श्रद्धा रखनी चाहिए। गुरु चरणों में आनन्द ही आनन्द है।

****

प्रवचन संख्या-39

योग साधना करने वाला कष्ट आने पर भी नहीं भटकता

अगर हम संसार के अंदर दृढ़ता पूर्वक सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें योग के साधन सीखने ही होंगे। क्योंकि पता नहीं इन साधनों की कब व कहां ज़रूरत पड़ जाए। अगर हमें योग आता है तो हमें परतंत्र होने की ज़रूरत नहीं होगी। योग के साधन जानने वाला कष्ट आने पर इधर-उधर नहीं भटकता। वह आत्मनिर्भर बन जाता है। गुरु मंत्र लेने मात्र से शिष्य का कल्याण नहीं हो जाता जैसे स्कूल में नाम लिखवाने मात्र से कोई विद्वान नहीं बन जाता। योगी गुरु के शिष्य को औषधियों की जरूरत नहीं पड़ती। योग द्वारा लाइलाज रोगों को भी ठीक किया जा सकता है। गठिया आदि भयंकर रोग का ईलाज भी योग में है। औषधियों द्वारा रोगी को कुछ लाभ तो हो जाता है परंतु पूर्णतः स्वस्थ नहीं किया जा सकता। जैसे कि गठिया आदि रोगों से हड्डियों तक में विकार आ जाता है। ऐसे भयंकर रोग का ईलाज भी योग में है। दमा आदि रोगों को भी षट्कर्मों द्वारा लाभ पहुंचता है। योग की क्रियाओं द्वारा किया गया ईलाज स्थायी होता है। योग के एक

ही साधन से कई रोगों का ईलाज संभव है। नेति तो रामबाण का काम करती है। ऊष्म जल से नेति करने पर बलगम शांत हो जाती है। दूध नेति द्वारा दिमागी कमज़ोरी से छुटकारा पाया जा सकता है। जुकाम में अगर हम औषधियों का प्रयोग करेंगे तो नाक से निकलने वाला मल रुक जाएगा, जिसके कारण मल (गंदगी) अंदर पड़ी रहेगी और साइनस जैसा असाध्य रोग उत्पन्न करेगा। आंखों में मल रुक जाने से दृष्टि में हानि होगी। नेति से व्यक्ति की पांचों ज्ञानेन्द्रियां ठीक रखी जा सकती हैं। योगी गुरु का शिष्य पेट के मल को वमन आदि क्रियाओं द्वारा शुद्ध कर देता है। हमारे अंदर की आंतें जो 25 फुट लंबी हैं, अगर इनमें मल भरा रहेगा तो उससे कई रोगों का जन्म होगा। इनकी शुद्धि योग द्वारा शंख प्रक्षालन क्रिया से की जाती है। अत: योग द्वारा ही शरीर पूर्णतया स्वस्थ रह सकता है। लेकिन लोग योग के साधनों को करने में रुचि नहीं लेते। गुरु बनाना ही काफी नहीं उसकी शिक्षाओं पर भी चलना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-40

विदेशों में भी पिलाया जा रहा है योग का अमृत

(योग से ही स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव)

हज़ारों वर्षों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़ा भारत विदेशियों के अत्याचारों को सहता रहा और भारतीय योग को मान्यता नहीं दी जाती थी। लेकिन आज देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी योग का अमृत पिलाया जा रहा है। हम योग द्वारा ही अपनी प्राचीन संस्कृति व ऋषियों की विद्या के साथ जुड़ सकते हैं। योग द्वारा ही अर्जुन व भीम जैसे योद्धा बन सकते हैं। योग द्वारा ही देश व धर्म के प्रति कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाया जा सकता है। दुःख की बात है कि पहले तो बच्चों को राजयोग व हठयोग की शिक्षा दी जाती थी जो आज नहीं दी जाती। योग के ज्ञान द्वारा ही हमारे समाज का सुधार हो सकता है। पतंजली ऋषि ने योग को दो भागों में बांटा है। इसके पांच बाहरी अंग हैं तथा तीन अंतरंग हैं। बाहरी अंगों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार शामिल हैं, जबकि अंतरंगों में धारणा, ध्यान व समाधि आते हैं। आज कई गुरु ऐसे निकल आए हैं जो कहते हैं कि चलो हम तुम्हें ध्यान में बैठा दें। आज

कई लोग ध्यान में बैठने का यत्न करते हैं परन्तु बाहरी अंगों की ओर ध्यान नहीं देते। इसलिए हमें ध्यान सफलता प्राप्त नहीं होती तथा योग के बाहरी अंगों का ज्ञान प्राप्त किए बिना हम मन को एकाग्र करने के अधिकारी ही नहीं बन सकते। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इन चीजों के बारे में स्वयं भी शिक्षित हों व अपने बच्चों को भी इस संबन्धी जानकारी दें क्योंकि बच्चे ही राष्ट्र के निर्माता बनते हैं। उन्हें यम के भेद पता होने चाहिए। उन्हें पता होना चाहिए कि किसी को भी मन, वचन व कर्म से कष्ट नहीं देना चाहिए। सत्य का आचरण करना चाहिए। जो वस्तु अपनी है उसी में संतोष करना चाहिए व किसी के धन ऐश्वर्य की ओर अपनी वृत्तियों को जाने से रोकना चाहिए। अगर हम समय पर इन सब बातों को नहीं समझेंगे तो हमें एक न एक दिन पछताना पड़ेगा।

****

प्रवचन संख्या-41

योग नियमों का पालन करने वाला अपना उद्धार करने में सक्षम

(बहुत से गुरु योग की केवल बातें ही करते हैं)

इस संसार में हमें अपना उद्धार स्वयं करना है क्योंकि कोई किसी का उद्धार नहीं कर सकता। इस संसार के अंदर हमारा न तो कोई शत्रु है तथा न ही कोई मित्र है। आत्मा ही अपना मित्र है व आत्मा ही अपना शत्रु है। योग एक ज्ञान है। इसमें कर्म की प्रधानता है। जो योगी कर्म नहीं करते, केवल बातें करते हैं, उन्हें निष्कर्मी कहा जाता है। आज इस प्रकार के योगी कहलाने वालों की संख्या बहुत है। बहुत से गुरु भी योग की केवल बातें ही करते हैं। जब उन्हें स्वयं योग नहीं आता तो वह अपने शिष्य को उद्धार का मार्ग कैसे बतला सकते हैं? योग हमें संसार के अंदर उन्नत अवस्था तक ले जाने का साधन है। योगी लोग अपनी पुरातन संस्कृति को मानने वाले होते हैं। योग के पांच नियम हैं जिस पर चल कर ही हम अपना उद्धार कर सकते हैं। शरीर को ठीक रखने के लिए षट्कर्म बताए गए हैं। शरीर के उद्धार के लिए इन द्वारा उसकी शुद्धि ज़रूरी है। इसी प्रकार मन के उद्धार के लिए राजयोग के साधन

आवश्यक हैं। इसमें संतोष का होना जरूरी है। भगवान हमें जितना दे उससे संतुष्ट रहना चाहिए। हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने के लिए इन्हें तप द्वारा साधना चाहिए। जब यह वश में रहेंगी तो इच्छायें हमें परेशान नहीं कर सकेंगी। स्वाध्याय द्वारा हम बुद्धि को ठीक रख सकते हैं। हमें स्वाध्याय में धार्मिक ग्रंथ बार-बार पढ़ कर उनका ज्ञान और शिक्षायें मन में लानी चाहिएं। इससे बुद्धि जागृत होगी। इसके अतिरिक्त हमें ईश्वर के प्रति अपना सब कुछ अर्पण करना चाहिए और ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-42

योग से मन प्रकाशित होता है

(योग द्वारा रोग को आने से पहले ही रोका जा सकता है)

योग द्वारा संस्कारों के अंधकार में डूबा हुआ मन पुनः प्रकाशमय हो सकता है। भारत लंबे समय तक गुलाम रहा। दास्तां ने लोगों को मानसिक दृष्टि से परास्त कर दिया था। लोग अपने बौद्धिक ज्ञान व स्वाभिमान को भूल चुके थे। उनकी आत्मा में प्रकाश नहीं रहा था। योग जंगलों में भाग चुका था। श्री रामलाल जी महाराज इसे वापिस लोगों के उद्धार के लिए संसार में लाए। योग द्वारा ही आधि भौतिक, आधि दैविक तथा आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। हमारा जो पंच भौतिक शरीर है इसमें कई प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। शरीर की निरोगता के लिए हठ योग बतलाया गया है। मन की एकाग्रता के लिए राजयोग बतलाया गया है। हम अपने स्वरूप को भूलते जा रहे हैं। आज लोग प्रायः कई रोगों से पीड़ित हैं। योग द्वारा रोग को आने से पहले ही रोका जा सकता है। प्रत्येक माता-पिता, दादा-दादी को योग सीखना ज़रूरी है ताकि वे बच्चों को भी योग की शिक्षा दे सकें। बड़े योग करेंगे तो बच्चे भी उनका अनुसरण करेंगे। खांसी, जुकाम, ज्वर में

वमन, नकसीर में जलनेति, सिर दर्द में दूधनेति वं पेट दर्द में स्वांगासन अत्यंत लाभदायक सिद्ध होते हैं। दु:ख की बात यह है कि हमें योग की विधि नहीं आती, इसलिए हमें बीमारियां व चिंताएं सताती रहती हैं। आलस्य ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है जो हमें योग नहीं करने देता। योग कहता है कि किसी भी बीमारी का कारण हमारे अंदर मल का संचित होना है। जब यह मल ठोस बन जाता है तो रसौली आदि बन जाता है। नेति द्वारा मल का कण-कण बाहर निकलता है, वमन द्वारा पित्त दोष समाप्त हो जाता है। अगर तेज़ाबी मादा अंदर रहेगा तो इससे अल्सर बनेगा। लेकिन यह ज्ञान योग से ही प्राप्त होता है। हम लोग योग के गीत तो गा लेते हैं लेकिन इसका लाभ नहीं उठाते जो कि गलत बात है। योगाश्रम होते हुए भी बहुत कम लोग योग का लाभ उठा रहे हैं। लोग दवाईयां खाने को प्राथमिकता दे रहे हैं। हमें योग के ज्ञान को आगे फैलाना चाहिए क्योंकि अगर हमारा समाज रोगी होगा तो हम भी इससे बच नहीं सकेंगे।

****

प्रवचन संख्या-43

सुख जीवन का उद्देश्य

(आहार, विचार व व्यवहार की शुद्धता ही सुख का साधन)

सुख जीवन का उद्देश्य है एवं हम जो भी कार्य करते हैं अगर उससे सुख की प्राप्ति नहीं होती तो वह कार्य निष्फल है। अगर हमारा आहार शुद्ध नहीं है तो हम स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकते। आहार की शुद्धता का आज अभाव है। आज समाज में आहार का प्रदूषण बढ़ रहा है। इससे हमारा जीवन दु:खी होगा। यही कारण है कि आज हमारे बच्चे बिगड़ रहे हैं। मदिरापान करने वाला सुखी जीवन की आशा कैसे कर सकता है? हमें बुरे दृश्य नहीं देखने चाहिएं। इनका प्रभाव चित्त पर पड़ता है। जब हम ध्यान लगाते हैं व चित्त एकाग्र नहीं होता तो क्या लाभ? इसके लिए योग के अंदर लिखा है कि हमारे विचार शुद्ध होने चाहिएं। जिस प्रकार जिस स्थान पर हमने पूजा करनी होती है उस भूमि को शुद्ध किया जाता है, वैसे ही भक्ति के लिए मन को भी शुद्ध करना आवश्यक है। हमें अपने मन में किसी को शत्रु नहीं समझना चाहिए। हमें अपने शत्रुओं को भी मित्र बनाना चाहिए। क्योंकि कोई भी आदमी बुरा नहीं होता बल्कि वह बुरा इसलिए लगता है

क्योंकि हमारा मन शुद्ध नहीं होता। मन का प्रभाव कर्मों पर सीधा पड़ता है। कर्म योगी की कसौटी है। इसलिए हमारे कर्म योगानुकूल होने चाहिएं। कर्म करने से ही पता चलता है कि कौन योगी है। हमें योगानुकूल कर्म करते रहना चाहिए तथा प्रत्येक कर्म प्रभु निमित्त करना चाहिए। भगवान अवश्य अपने भक्त का ध्यान रखते हैं। लेकिन हमारा भगवान के प्रति प्रेम निःस्वार्थ होना चाहिए। सुख की प्राप्ति के लिए हमारा व्यवहार भी शुद्ध होना चाहिए। हमें अहिंसा का पालन करना चाहिए। अर्थात् किसी को मन, वचन व कर्म से दुःख नहीं देना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-44

योग भावी दु:खों का समाधान

(योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है)

दु:ख व सुख जीवन के दो पहलू हैं। हम प्रभु की भक्ति इसीलिए करते हैं कि हम दु:खों से बचे रहें। दु:ख व सुख कर्मों से आते हैं। कर्म प्रधान होता है तथा ईश्वर फल देने वाला है जो कर्मानुसार फल देता है। इसलिए हमें कर्मों पर विचार करना चाहिए। हम आने वाले दु:खों को रोकने का क्या उपाय करते हैं? जीवात्मा के चक्र का प्रवाह इसी जीवन में समाप्त नहीं हो जाता। आत्मा सदा रहती है। इस दृष्टि से जीवन बहुत लम्बा है। हमें आने वाले दु:खों के बारे में ज़रूर सोचना चाहिए। भविष्य के दु:ख, नरक आदि हटाए जा सकते हैं। प्रत्येक दु:ख के पीछे कारण होता है। अगर कारण पता लग जाए तो दु:ख दूर किए जा सकते हैं। लेकिन इसके लिए यत्न करना होगा। योग हमें बहादुर बनाता है, यत्न करने की शक्ति देता है। शास्त्रों में कहा गया है कि आने वाले दु:खों का कारण अज्ञान है, अविद्या है। अविद्या को दूर करने के लिए ज्ञान चाहिए। इसके लिए मार्ग योग बतलाता है। अगर हम योग

के अंगों का पालन करें तो हमारे मन का अंधकार हट जाएगा। मन की दृष्टि ठीक हो जाएगी, मन प्रकाशमय हो जाएगा। योग के अंग साधारण नहीं हैं। इनसे ज्ञान मिलता है। योग के अंगों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि का पालन करना होगा तभी हम शुद्ध रहेंगे। शुभ कर्म करने से शुभ फल की प्राप्ति होगी। यम क्या है? अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पांच यम हैं जबकि शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान पांच नियम हैं। हम सच बोलना चाहते हैं लेकिन बोल नहीं पाते क्योंकि हमने तर्कों के साथ वितर्कों को जोड़ लिया है। चोरी करना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि वितर्क हैं। इनमें से कुछ हम अपने कहने से करते हैं। हमें पता होता है कि यह गलत है परन्तु हम फिर भी करते हैं। कुछ कार्य हम दूसरों से कहकर करवा लेते हैं। कुछ दूसरो के पापों का समर्थन करते हैं। लेकिन जब हम ईश्वर के दरबार में जाएंगे तो सारे ही फंस जाएंगे, पाप करने वाला भी, किसी के कहने पर पाप करने वाला भी व दूसरों से पाप करवाने वाला भी। हम यह सब बातें लोभ, मोह व क्रोध के कारण करते हैं। परिणाम स्वरूप हमें अज्ञान व दुःखों की प्राप्ति होती है। एक बुरा कार्य करने पर

उसके बीज आगे तेजी से फैलेंगे। लेकिन योग के अंगों का पालन करने से हमारा अंत:करण शुद्ध होगा। हमारे अंदर ज्ञान पैदा होगा। ज्ञान से विवेक पैदा होगा जो हमें पाप व पुण्य के बारे में समझाएगा। इसलिए हमें अपने कल्याण के लिए योग करना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-45

लालची गुरु शिष्य को सन्मार्ग नहीं दिखा सकता

लालची गुरु अपने शिष्य को सन्मार्ग नहीं दिखा सकता। वह गुरु शिष्य को यह नहीं बतलाता कि यह जन्म किस लिए मिला है तथा इसमें मोक्ष प्राप्ति हेतु हमें क्या करना है। सबसे पहले हमें अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए। अगर हमारा शरीर ही अस्वस्थ है, तो हमारा जीवन नरक समान है। किसी भी प्रकार के सुख को शरीर के बिना नहीं भोगा जा सकता। हमें स्वस्थ शरीर के साथ-साथ शांत मन चाहिए। लेकिन जिन व्यक्तियों को योगी गुरु से शिक्षा नहीं प्राप्त होती वे अपने मन को शांत नहीं रख पाते। मानव जन्म में आकर हमें ज्ञान चाहिए। ज्ञान विहीन मनुष्य पशु समान है। कई प्रकार के पशु हैं, उनके शरीर अलग-अलग हैं। उन्हीं में मनुष्य भी शामिल है। भेद तब होता है जब मनुष्य में ज्ञान हो। मानव शरीर हमें मोक्ष प्राप्त करने के लिए मिला है। अगर हम 84 की योनियों में ही भटकते रहे तो क्या लाभ? हमें इससे बचने का उपाय करना चाहिए। शरीर बिना योग के क्षीण होता चला जाता है। शरीर के लिए योग के साधन हैं। योग क्या है? यह शरीर का

एक प्रकार का व्यायाम भी है। अच्छा खाना व अच्छा व्यायाम ही शरीर को ठीक रखता है। आज सारी दुनिया योग की आवश्यकता महसूस कर रही है। वह योग की तरफ बढ़ रही है। हमें भी योग को ग्रहण करने में संकोच नहीं करना चाहिए। हमें जल नेति, वमन, प्राणायाम व आसन ही तो करने हैं। जल नेति हमारे दिमाग को ठंडा और शुद्ध करती है। जिस रास्ते से ऑक्सीजन अंदर जानी है वह रास्ता शुद्ध होना चाहिए। यह हवा फेफेड़ों में जाकर हमारे रक्त को शुद्ध करती है। वमन करने से मेदे से मल, पित्त व गर्मी आदि निकल जाती है। प्राणायाम से हमारा श्वास लंबा व दीर्घ हो जाता है। हमारी आयु दिनों में नहीं, बल्कि श्वासों में नापी गई है। प्राणायाम से हमारी आयु बढ़ जाती है। इससे हमारे दिल व फेफड़ों की शक्ति बढ़ जाती है। दिल व फेफड़े मज़बूत होने पर हम स्वस्थ रहते हैं। फेफड़ों में हवा जाती है। हवा हमें चुस्ती देती है। हवा प्राणायाम द्वारा भरी जाती है। योग के अन्दर छोटे-छोटे अंगों का व्यायाम भी है। सुस्ती अर्थात् आलस्य ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। हमें प्रतिदिन योग अवश्य करना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-46

सद्गुरु की प्राप्ति के बिना भटकता रहता है मन

पूर्ण सद्गुरु की प्राप्ति के बिना मनुष्य का मन भटकता रहता है। हमारा जीवन सुख व दुःख की लहरों के बीच झूलता रहता है। तन व मन ही सुख दुःख के आधार हैं। मानसिक दुःख क्या हैं? यह कैसे उत्पन्न होते हैं? इन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है।? इस बात पर हमें विचार करना चाहिए। मानसिक दुःखों का आधार क्लेश है। कलेशों का दूर करना आवश्यक है। जिस प्रकार बीमारी का ठीक ईलाज न होने पर वह जान लेकर जाती है, इसी प्रकार अगर क्लेश नहीं जायेंगे तो वह हमारे जन्म-जन्मांतर के पतन का कारण बनेंगे। क्लेश क्या है? इसकी जड़ क्या है? शास्त्रों के अनुसार राग, द्वेष व अहंकार आदि क्लेश हैं। जब हमें किसी वस्तु से सुख मिलने लगता है तो हमें उस वस्तु से राग हो जाता है। जो चीज़ हमें दुःखदायी प्रतीत होती है उससे हमें द्वेष होता है। हम सुखी रहना चाहते हैं इसलिए दुःख नहीं चाहते। राग व द्वेष आपस में बदल भी जाते हैं। यह मानसिक चीजें हैं। मन ही सुखी होता है व मन ही दुःखी होता है। अस्मिता (अहंकार) भी

एक क्लेश है। इसके प्रभाव से हम कई प्रकार के पाप करते हैं। अभिनिवेश अर्थात् मृत्यु का भय मनुष्य का शत्रु है। यह भी मानसिक रोग है इन चारों क्लेशों का मूल अविद्या है जो पांचवां क्लेश है। यह पांचों क्लेश वृत्तियां कहलाती हैं। मन हमेशा वृत्तियों में घूमता रहता है। वृत्तियों को केवल ध्यान द्वारा ही ठीक किया जा सकता है। ध्यान करना आसान काम नहीं है। इसके लिए हमें ध्येय चाहिए तथा ध्यान की प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए। हमें अपने ध्येय अर्थात् गुरु के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। तभी मन एकाग्रता की तरफ अग्रसर होगा। जैसे-जैसे ध्यान लगना आरम्भ हो जाएगा वृत्तियों का निरोध होने लगेगा। क्लेश की बीमारी मानसिक है जो जन्म-जन्मांतर तक पीछा नहीं छोड़ती। इसके लिए हमें भगवान को हर समय याद करना चाहिए। उसके परिणाम स्वरूप राग-द्वेष आदि दोषों से मुक्ति मिलेगी।

****

प्रवचन संख्या-47

ईर्ष्यालू मन प्रभु-भक्ति नहीं कर सकता

(अहंकार की भावना ही पतन का कारण)

जिस मन में ईर्ष्या होती है वह मन कभी भी प्रभु की भक्ति नहीं कर सकता। प्रभु भक्ति के बिना मन अशांत रहता है। हमारे मन में राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ व अहंकार की भावना नहीं आनी चाहिए। आज बहुत लोग भक्ति करने का दिखावा करते हैं। भक्ति तो केवल मन के अंदर रहनी चाहिए। जो भक्ति बाहर दिखाई दे उसका कभी भी लाभ नहीं होता बल्कि इससे अहंकार की भावना जन्म लेती है जो हमारे पतन का कारण बनती है। भक्ति का नाता केवल भगवान से होता है। यह नाता गुप्त होता है। इसके लिए जरूरी है कि हमारी बुद्धि में ज्ञान हो तथा ज्ञान भी वह जो हमारे अंदर से उपजे। किताबी ज्ञान से लाभ कम ही होता है। आजकल बाज़ार में कई किताबें ऐसी भी हैं जिनमें ज्ञान अधूरा है। इस ज्ञान में शक्ति नहीं होती। इसके विपरीत जो ज्ञान अंदर से उपजता है वह उजाला पैदा करता है। इस ज्ञान को प्राप्त करने का मार्ग योग बतलाता है।

ज्ञान से मुक्ति मिलती है। योग द्वारा ही भक्ति को संभालकर रखा जा सकता है, योग ही बुद्धि को प्रकाशमय करता है तथा योग ही मोक्ष के द्वार तक ले जाता है। योग ही बतलाता है कि ध्यान में भी तब बैठो जब प्रभु में मन लगे अगर एक क्षण के लिए भी हमारा मन भगवान में लग जाए तो यह अश्वमेघ यज्ञ का फल देता है। गीता में भगवान ने कहा है कि ध्यान इस प्रकार का होना चाहिए कि हमारा मन भगवान में लगा रहे चाहे तन संसार के काम काज करता रहे। शरीर का दुःख हो तो यह सोचना चाहिए कि शरीर तो संसार में ही रह जाना है। राग, द्वेष व अहंकार से बचने के लिए हमें इसके विपरीत सोचना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि अहंकार उसके पतन का कारण बना। यह सब चीज़ें योगी गुरु ही अपने शिष्य को बतलाता है। योगी गुरु के चरणों में ही चारों धामों का पुण्य मिल जाता है। योग के बिना सारे तीर्थ अधूरे रहते हैं। योग के बिना सुख तो नहीं मिलता लेकिन दुःख ज़रूर मिल जाते हैं।

****

प्रवचन संख्या-48

मुक्ति प्राप्ति हेतु बाहरी शुद्धि के साथ आंतरिक शुद्धि भी आवश्यक

मानव जीवन मोक्ष प्राप्ति के लिए मिलता है। यही जीवन की सच्चाई है तथा इस जीवन का रहस्य योगी सद्गुरु ही बता सकते हैं। मोक्ष तो आत्मा को मिलता है। शरीर तो साधन मात्र है। शरीर भी दो प्रकार के मिले हुए हैं, सूक्ष्म व स्थूल। इन दोनों से मिलकर सद्गुरु के उपदेशों पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त करना है। इन शरीरों से क्या करना है, यह योग बताता है। जिस प्रकार ठीक कलम के बिना लिखा नहीं जाता, उसी प्रकार अस्वस्थ शरीर से मोक्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता। मुक्ति के लिए ज़रूरी है कि शरीर स्वस्थ व मन शुद्ध हो। जो लोग योग नहीं जानते, वह केवल बाहरी शरीर की सफाई की तरफ ध्यान देते हैं। लेकिन शरीर को अंदर से शुद्ध करने के लिए योगी गुरु द्वारा बताये गए षट्कर्मों को भी करना चाहिए। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें षट्कर्म-नेति, धौति, न्यौलि, बस्ति, त्राटक और कपालभाति का अभ्यास करना चाहिए और आसनों द्वारा शरीर को दृढ़ व प्राणायाम द्वारा चुस्त

रखने का यत्न करना चाहिए। शरीर के स्वस्थ रहने से हमारा मन और बुद्धि भी स्वस्थ रहेंगे। मन मनुष्य रूप से जीव के मोक्ष का कारण होता है। तथा बुद्धि उस की सहायता करती है। बुद्धि में गुरु का ज्ञान और मन से वृत्तियों का निरोध कर एकाग्रचित हो कर प्रभु के ध्यान की परम आवश्यकता होती है। वृत्तियों का निरोध तभी हो सकता है जब मन शुद्ध हो। अर्थात् राग द्वेष आदि दोषों से रहित हो। योग में बतलाये हुए यम नियमों द्वारा और गुरु उपदेशों के पालन द्वारा हमें मन को सतत शुद्ध करते रहना चाहिए। तभी हम मोक्ष प्राप्ति की आशा कर सकते हैं अन्यथा नहीं। हमें भोजन की ओर भी ध्यान देना चाहिए। भोजन सात्विक होना चाहिए। क्योंकि सात्विक भोजन मुक्ति प्राप्ति के लिए आवश्यक है। सात्विक भोजन वह है जो हमें स्वस्थ रखे।

****

प्रवचन संख्या-49

शांति के लिए योगी गुरु की शरण में जाना होगा

शारीरिक सुख व मानसिक शांति की प्राप्ति के लिए योगी गुरु की शरण में जाना होगा क्योंकि वही बता सकते हैं कि आज के युग में इन्हें किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। शारीरिक सुख की प्राप्ति के लिए ज़रूरी है कि शरीर स्वस्थ रहे। इसके लिए योग के आसन बताए गए हैं जिससे शरीर भी ठीक रहता है व व्यक्ति दीर्घायु प्राप्त करता है। मानसिक शांति के लिए धारणा ध्यान बताए गए हैं। योगी गुरु मन को स्थिर करने के लिए एक इष्ट देते हैं जिसे शिष्य ने अपने हृदय में धारण करना होता है।

गीता के अंदर भगवान ने कहा है कि अगर तुम मानसिक शांति चाहते हो तो अपने मन को समुद्र बनाओ। अगर मन समुद्र बनेगा तो शांति ही शांति होगी क्योंकि समुद्र हर तरफ से पूर्ण होने के बावजूद अपनी मर्यादा में रहता है। इसमें अनेकों नदियां गिरती हैं। लेकिन समुद्र अपने स्थान पर बना रहता है। इसी प्रकार जिस मनुष्य के अंदर कामनाएं व इच्छाएं आती हैं तथा अपना प्रभाव छोड़े बिना व मन से तरंगें उठाए

बिना, बिना किसी हलचल के चली जाती हैं वह मन शांत रहता है। शांती अंदर से आती है, बाहर से नहीं। रामायण, गीता व अन्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ने से शांति तो मिलती है परन्तु स्थिर शांति केवल योग ध्यान से ही मिलती है। हमें अपने मन के स्वरूप को बदलना होगा। समुद्र के गुणों को अपने अन्दर पैदा करना होगा। मन भी दो प्रकार का होता है। संकीर्ण विचारों वाला मन छोटा होता है तथा विशाल विचारधारा वाला मन बड़ा होता है। हमारा मन विशाल होना चाहिए। हमारा मन समुद्र की तरह गहरा होना चाहिए ताकि इसकी गहराई तक कोई पहुंच न पाए। समुद्र के अंदर न जाने कितने हीरे जवाहरात आदि हैं। इसी तरह हमारे पास कितना भी कुछ क्यों न हो हमें अभिमान नहीं करना चाहिए। मन शांत रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें मन को दानी बनाना चाहिए। जो मनुष्य दानी होता है उसे शांति मिलती है। दान धन से, विद्या से व मन से होता है। दानी तपस्वी भी होता है। सूर्य भी तपस्या करता है। फिर समुद्र के जल का वाष्पीकरण करके वर्षा का दान करता है। यह सब बातें योगी गुरु ही सिखला सकते हैं। रामायण, गीता आदि ग्रंथों की शिक्षाओं को हमें जीवन में लाना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-50

योग के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं मुक्ति व मोक्ष

बिना लक्ष्य के जीवन नीरस होता है। मुक्ति अथवा मोक्ष ही हमारे जीवन का लक्ष्य है तथा इसे केवल योग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति करते समय, तप करते समय, अथवा पाठ करते समय भी हमें अपने लक्ष्य का ज्ञान होना चाहिए। लक्ष्य प्राप्ति के लिए कुछ कठिन साधन होते हैं। परन्तु ऋषि-मुनियों ने इसके लिए कुछ आसान साधन भी बताए हैं। उनके अनुसार गृहस्थ में रहकर भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। भगवान के तीन रूप होते हैं। वह पैदा भी करता है, पालन भी करता है व संहार भी करता है। भगवान से मुक्ति प्राप्त करने के लिए हमें मन व बुद्धि की विशेष ज़रूरत नहीं होती। अगर मन व बुद्धि को भगवान से जोड़ दें तो मुक्ति प्राप्त हो सकती है। केवल योगी ही इस रहस्य को जानता है। भगवान कहते हैं कि जो लोग मेरा चिंतन करते हैं वह अंतिम समय में मेरे पास आते हैं जो भूतों को याद करते हैं वह भूतों के पास जाते हैं। मन को इन्द्रियों से मत जोड़ो। जब मन भगवान में लगा होगा तो इस पर इन्द्रियों का प्रभाव नहीं

पड़ेगा। मोक्ष के लिए मन और इन्द्रियों के बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर दो कि ये आपस में मिल न सकें। इन्द्रियां अपना काम आप करती हैं। प्रकृति में इतनी शक्ति है कि वह हमारे ध्यान के बिना भी काम कर लेती है। योग मुश्किल नहीं है यह अभ्यास से आसान हो जाता है। मन का काम भगवान को याद करना है व बुद्धि का काम है सोचना। बुद्धि के लिए स्वाध्याय आवश्यक है। जब मन भगवान में टिकता है तो उसे ईश्वर प्रणिधान कहते हैं। स्वाध्याय के लिए शास्त्रों का बार-बार ज्ञान प्राप्त करो। इससे हमारी बुद्धि भगवान में टिक जाएगी। बुद्धि के ऊपर जो बाहरी संस्कार लगे होंगे वह मिट जाएंगे। स्वाध्याय से ईश्वर का मिलाप हो जाता है। जब हम स्वाध्याय करते हैं तो हमें ईश्वर का आभास होता है। दुःख की बात है कि आज हम एक देवता व भगवान की आराधना करने की बजाए कईयों को गले लगाते हैं। यही मुक्ति के रास्ते में एक रुकावट है। शास्त्रों में लिखा है कि हमारे लिए, एक ही देवता, एक ही भगवान, एक ही मंत्र, एक ही पाठ, एक ही पुस्तक होनी चाहिए तभी मुक्ति मिलेगी।

****

प्रवचन संख्या-51

योग साधना मोक्ष का उपाय

(शरीर, मन व बुद्धि मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं)

शरीर, मन व बुद्धि मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। इन तीनों में से किसी एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। केवल मानव शरीर ही मोक्ष के लिए होता है। क्योंकि मानव शरीर में ही सात्विक मन व बुद्धि जो कि ज्ञान व भक्ति के आधार हैं, होते हैं। मानव की बुद्धि ज्ञान का जितना चाहे विस्तार कर सकती है। जितना बुद्धि में साधना द्वारा ज्ञान होगा, मानव उतना ही मोक्ष के करीब चला जाएगा। मन भी मोक्ष प्राप्ति का एक विशेष साधन है क्योंकि मन से ही जीव को मोक्ष मिलता है व मन से ही बंधन मिलता है। मोक्ष के लिए पहले मन को तैयार करना पड़ता है। राजयोग मन की वृत्तियों के निरोध का नाम है। योग की साधना मन से ही की जाती है। मन को मुक्ति के लिए तैयार करने के लिए समाधि का अभ्यास जरूरी है जो मन की वृत्तियों को काबू करने से होता है। कलिष्ट वृत्तियों को समाप्त करके मन में अकलिष्ट वृत्तियों को लाना इसका प्रथम उपाय है। अकलिष्ट वृत्तियां सात्विक होती हैं।

सात्विक वृत्तियों से अच्छा जन्म मिल सकता है। मोक्ष के लिए सत्व, रजस व तमस तीनों गुणों से ऊपर जाना होगा तभी मुक्ति मिलेगी। इसलिए मन को त्रिगुणातीत करने की परम आवश्यकता है। इस अवस्था में बुद्धि के अंदर शुद्ध ज्ञान की उत्पत्ति होती है। मोक्ष का परम आधार ज्ञान है। ज्ञान समाधि की उस उत्तम अवस्था को कहते हैं जिसमें विवेक ख्याति बुद्धि की प्राप्ति होती है अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। उस अवस्था को धर्ममेघ समाधि भी कहते हैं। धर्म का अर्थ है ज्ञान व मेघ का अर्थ है बादल। इस अवस्था में ज्ञान की वर्षा होने लगती है। बिना प्रयत्न ही ईश्वरीय ज्ञान का उद्गम होता है व जीव को कोई बंधन नहीं रहता। ऐसी अवस्था में शरीर का भी ध्यान नहीं रहता। मन के संस्कार भी पीछा छोड़ देते हैं। केवल शुद्ध ज्ञान ही उसका साथी होता है। यह ज्ञान स्वतः ही प्राप्त होता है। इसी को वेद ज्ञान कहते हैं। वेदों की उत्पत्ति इसी ज्ञान से हुई हैं। इसी का नाम ईश्वरीय या इलहामी ज्ञान भी है। मोक्ष की यात्रा शरीर से आरम्भ होकर उस अवस्था में पहुंचती है जहां शरीर, मन व बुद्धि कुछ नहीं रहता, केवल ज्ञान ही ज्ञान रह जाता है।

****

प्रवचन संख्या-52

प्राण दिल की गति को भी चलाता है

(प्राणों के बिना जीवन, शरीर अथवा योग का कोई महत्व नहीं)

प्राणों के बिना शरीर, जीवन व योग का कोई महत्व नहीं। योग के अंदर प्राण का अर्थ श्वासों से नहीं है। प्राण एक शक्ति है जो हमारे श्वासों को चला रही है। प्राण केवल हमारे श्वासों को ही नहीं चलाता, यह हृदय की गति को भी चलाता है। भोजन को पचाता है व हमारे अंदर के मल मूत्र को शोधित करता है। यह प्राण पांच प्रकार के होते हैं। प्राण का स्थान हृदय में, अपान गुदा में, समान नाभि में, उदान कंठ में व व्यान सकल देह में होता है। इन प्राणों का मुख्य केन्द्र शरीर का स्तम्भ मेरूदंड है। मेरूदंड सारे शरीर को शक्ति देता है। योग के अंदर प्राणों की शक्ति बढ़ाने के लिए जो साधन हैं वह इसी से संबन्धित हैं। पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, पादहस्तासन व हलासन आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। मेरूदंड का अर्थ केवल इसकी हड्डियों से नहीं है। इसके भीतर जो प्राण नाड़ियां हैं, वे मेरूदंड का आधार हैं। माला के मनकों में अगर

धागा न हो तो मनके बिखर जाते हैं। इसी प्रकार प्राण नाड़ियां अगर कमजोर हों तो मेरूदंड में दुर्बलता आती है और उसके कारण फिर शरीर में भी विकार पैदा होते हैं। मेरूदंड के अंदर जो नाड़ियां हैं, उसके भी केन्द्र हैं। यह केन्द्र शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में प्राण शक्ति पहुंचाते हैं। योग में इन केन्द्रों को चक्र कहते हैं। मेरूदंड में प्राण शक्ति के छः चक्र हैं। मूलाधार का स्थान गुदा के पीछे, स्वाधिष्ठान का स्थान लिंग के पीछे, मणिपुर का स्थान नाभि के पीछे, अनाहत का स्थान हृदय के पीछे, विशुद्ध का स्थान कंठ के पीछे व आज्ञा का स्थान भृकुटी के पीछे बताया गया है। मेरूदंड सिर की चोटी से आरम्भ होता है तथा सबसे नीचे के चक्र मूलाधार तक हैं। इन्हीं चक्रों द्वारा हमारी सभी प्रक्रियाएं होती हैं। मेरूदंड शरीर का एक तना है। हाथ पैर आदि इसकी शाखाएं हैं। मनुष्य का शरीर एक वृक्ष के समान है। इसकी जड़ें ऊपर हैं व शाखाएं तथा पत्ते नीचे हैं। कहा भी गया है कि ***ऊर्ध्व मूलम् अधा शाखम्*** अर्थात् मनुष्य एक उल्टा वृक्ष है। इसे जो शक्ति मिलती है वह जड़ों से मिलती है। जड़ें चाहे ऊपर हों अथवा नीचे अगर हम जड़ों को पानी नहीं देंगे तो यह वृक्ष सूख जाएगा। नाक द्वारा जो हम जल नेति करते हैं उस द्वारा हमारे

सिर रूपी जड़ों में ताज़गी आती है। शास्त्रों में कहा गया है कि जो व्यक्ति सुबह उठकर नाक द्वारा एक गिलास पानी पीता है, उसके कई रोग समाप्त होते हैं। उसकी बुद्धि तेज होती है, दृष्टि बढ़ती है, बाल उम्र से पहले सफेद नहीं होते, कांपते हाथ-पैर ठीक होते हैं तथा चेहरे पर झूर्रियां नहीं पड़ती।

****

प्रवचन संख्या-53

योग द्वारा ही जीवन का कल्याण होता है

(जादू टोने भगवान का मुकाबला नहीं कर सकते)

मन को गुरु चरणों में लगाने से ही मानव का कल्याण हो सकता है। क्योंकि मन से ही मुक्ति मिलती है व मन से ही आवागमन का चक्र मिटता है। हमने मन को समझाना है कि इसने किस मार्ग पर चलना है। मन को मज़बूत बनाना है ताकि मुक्ति मिल सके। इसके लिए जरूरी है कि हम प्रभु पर विश्वास रखें। इसी से मन पक्का होगा। जितना भगवान पर विश्वास कम होगा उतना ही मन दुर्बल होगा। हमें भगवान की भक्ति दृढ़ता पूर्वक करनी चाहिए। लेकिन इसमें कई रुकावटें हैं। पहली रुकावट यह है कि हम गुरु को सर्वशक्तिमान पढ़ते तो हैं, लेकिन मानते नहीं। हम ईश्वर के समकालीन अन्य शक्तियों को मानने लगते हैं। इससे मन कमज़ोर हो जाता है। गुरु व भगवान एक ही चीज़ हैं।

गुरु भगवान का ही साकार रूप है। भगवान ने हमारा भाग्य बनाया है। वह जानते हैं कि हमें किस तरफ लेकर जाना है। लेकिन हम ग्रहों व नक्षत्रों पर विश्वास करने लगते हैं। क्या

यह भगवान का मुकाबला कर सकते हैं? हम जादू-टोने पर भी विश्वास करते हैं। क्या यह ईश्वर का विधान बदल सकते हैं? हमें विश्वास होना चाहिए कि गुरु हमारी हर परिस्थिति में रक्षा कर सकते हैं तथा करेंगे भी। यदि हमें यह विश्वास नहीं होगा तो हम भक्ति नहीं कर सकते। कमज़ोर मन बंधन की तरफ ले जाता है। यह मुक्ति नहीं दिला सकता। आज लोग 'ओपरी कसर' पर विश्वास करते हैं लेकिन प्रभु पर विश्वास नहीं करते। वास्तव में हमें जो कसर होती है वह ओपरी नहीं बल्कि मानसिक होती है। हमारे अंदर की कुछ त्रुटियां हैं जो हमें उन्नति नहीं करने देतीं, वे हमें जादू-टोने की तरफ ले जाती हैं। भीतरी कसर भी तीन कारणों से होती है। इसका पहला कारण है स्त्यान। इसका अर्थ आलस्य है। इसके कारण ही हम सुबह उठकर योग के साधन नहीं करते जिस कारण हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। हम इसके लिए ओपरी कसर को दोषी ठहराते हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि हम प्रतिदिन प्राणायाम करें। जिससे स्त्यान (सुस्ती) नहीं होगा। योगी न तो किसी तिथि में विश्वास करता है तथा न ही किसी दिन में। वह तो केवल ईश्वर में विश्वास करता है। दूसरा कारण संशय है। हमें संशय रहता है कि क्या ईश्वर सब कुछ करता है? हम

भ्रम में रहते हैं जैसे कि ईश्वर अपने स्थान पर, पीर-पैगम्बर देवता आदि अन्य शक्तियां अपने स्थान पर हैं। हम सबको प्रसन्न करने का यत्न करते हैं। संशय का निवारण स्वाध्याय से किया जा सकता है। इसकी शिक्षा हमें गुरु जी से मिलती है। हमें गुरु के कहे वचनों का पूर्णतः पालन करना चाहिए। एक अन्य कारण प्रमाद है। हम समय पर काम न करके उसे टालते रहते हैं। हम समय की कदर नहीं करते। जो समय की कदर नहीं करता, समय भी उसकी कदर नहीं करता। अतः हमें संशयों को त्याग कर ईश्वर में विश्वास व योग तथा गुरु में श्रद्धा रखनी चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-54

मन के रोग अधिक संक्रामक

(मन व शरीर में परिवर्तन स्वाभाविक)

हम सब पृथ्वी का ही एक अंग हैं। इस पृथ्वी पर कई प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। पृथ्वी पर मौसम बदलता है तथा कई प्रकार के जीव आते रहते हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर में भी कई परिवर्तन आते हैं। हम इन परिवर्तनों को रोक नहीं सकते। हमें सिरदर्द, जुकाम, आंखों के रोग आदि स्वत: ही आते रहते हैं।

योग इन रोगों को रोकने में हमारी सहायता करता है। जुकाम आदि के लिए जल नेति बताई गई है। सिर दर्द जो कि कमज़ोरी के कारण होता है उसके लिए दुग्ध नेति लाभदायक है। प्रभु जी ने हमें शरीर के आने वाले कष्टों को रोकने व उनके उपचार के लिए योग के साधन बतलाए हैं। अगर हम इन साधनों को नहीं करेंगे तो दु:ख आते ही रहेंगे। जिस प्रकार शरीर के कष्ट बिना बुलाए आते हैं, उसी प्रकार मन के अंदर भी स्वाभाविक विकार आते रहते हैं। इनमें एक दोष हमारा अपना स्वभाव है। हम दूसरों को दु:ख देने में प्रसन्नता अनुभव

करते हैं। आज हम भले मनुष्यों को भी दुःख देने में संकोच नहीं करते, जब यह प्रवृत्ति बढ़ती रहती है तो यह लाइलाज रोग बन जाती है। इसे रोकना बहुत जरूरी है। आज झूठ बोलना भी हमारा स्वभाव बन गया है। अगर हमें यह रोग न हो तो हमारा मन निरोग बना रह सकता है। आज कोई भी व्यक्ति सत्य बोलने को प्राथमिकता नहीं देता। इस बीमारी को आरम्भ से रोकना चाहिए। एक बिमारी चोरी की है जो हमें बचपन में ही घेर लेती है। छोटा बच्चा दूसरों की वस्तुऐं उठाने में आनन्द अनुभव करता है। एक अन्य बीमारी वासना है। यह पाप हमारी आंख करती है। यह बहुत भयंकर बीमारी है। राम-रावण युद्ध इसी के कारण हुआ था। यह रोग संक्रामक रोग बन जाता है। एक अन्य बीमारी लालच की है जो कि कई बीमारियों को जन्म देती है। इन सभी बीमारियों को योग द्वारा ही रोका जा सकता है। इन सभी की रोकथाम के लिए योग में पांच यम बताए गए हैं जैसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपिरग्रह।

यम का अर्थ ही रोकना है। अहिंसा का पालन करने से हम दूसरों को दुःख देने के स्वभाव को बदल सकते हैं। हमें

मन, कर्म, वचन से किसी को दुःख नहीं देना चाहिए। सत्य द्वारा हम झूठ पर काबू पा सकते हैं तो ब्रह्मचर्य का पालन करने से हम वासना की भयंकर बीमारी का ईलाज कर सकते हैं। अस्तेय द्वारा चोरी की व अपरिग्रह द्वारा लालच की बीमारी का ईलाज किया जा सकता है। हम इन पांचों पर चलने का यत्न नहीं करते इसलिए हमारा मन दोषों में फंस जाता है।

****

प्रवचन संख्या-55

सन्तोष प्राप्ति के लिए इन्द्रियों पर काबू पाना आवश्यक

(अज्ञानी पुरुष अमृत को भी विष बना देता है)

श्रद्धा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। जिस जीवन में श्रद्धा नहीं वह जीवन निष्फल है। योग एक व्यवहारिक विद्या है। इसमें पहली बात ही यह है कि हमें जो शिक्षा मिले हम उसका अभ्यास करें। जीवन को सुखी बनाने व मोक्ष प्राप्ति के लिए योग में कई साधन बताए गए हैं। राजयोग में जीवन के नियम बताए गए हैं जिन पर चलकर जीवन को सार्थक व परिपूर्ण बनाया जा सकता है। लेकिन इन नियमों की पालना दृढ़ता पूर्वक करनी होगी। ऋषियों ने बताया है कि अगर शरीर ठीक रहेगा तो ही हम धर्म के मार्ग पर चल सकेंगे। शरीर को ठीक रखने के लिए हठयोग में पहला नियम शौच बताया गया है। सफाई ही खुदाई है। हमारा सब कुछ शुद्ध होना चाहिए। योग गहराई तक जाता है। वह कहता है कि शरीर के अंदर जो भी कुछ है वह शुद्ध होना चाहिए। इसके लिए षट्कर्म बनाए गए हैं जिनके द्वारा शरीर को शुद्ध व ठीक रखा जा सकता है। इसमें नेति, धौति, प्राणायाम, त्राटक व

कपालभाति शामिल हैं। इन सभी को आवश्यक मात्रा में करें। इन साधनों के प्रति संशय मत करें यह ऋषियों ने बताए हैं। इन्हें योगी गुरु के पास जाकर सीखा जा सकता है। मन भी शरीर का एक अंग है। अगर यह ठीक नहीं तो जीवन सुखी नहीं हो सकता। मन को सुखी रखने का एक ही मंत्र है - संतोष। पतंजलि ऋषि ने कहा कि जिसे संतोष मिल गया उसे कुछ नहीं चाहिए। वह पूर्ण सुखी है। अपने से छोटे की तरफ देखो संतोष मिल जाएगा। कई बार संतोष टूट जाता है। हमारी पांच इन्द्रियां हैं। जब उन द्वारा हम किसी वस्तु की इच्छा करते हैं और यदि वह हमें नहीं मिलती तो हम असन्तुष्ट हो जाते हैं। यह इन्द्रियां प्रायः बिगड़ी हुई हैं। हर समय कुछ न कुछ मांगती रहती हैं। इन्हें काबू करने के लिए तप का नियम बताया गया है। तपस्वी का जीवन सुखी रह सकता है। वह सभी परिस्थितियों में सुखी रहता है। डोलता नहीं है। जीवन सदा रोशनी में नहीं रहता इसमें अंधेरा भी आता है। अंधेरा रोकने के लिए ऋषियों ने स्वाध्याय का नियम बताया है। सत्संग व पाठ करने से ज्ञान मिलता है। अनेक प्रकार का संशय दूर हो जाता है। हमें यह सोचना चाहिए कि जब जीवन समाप्त हो जाएगा तब क्या होगा? जिसके पास जाना है अर्थात् ईश्वर, उसे हमेशा याद रखो। संसार में सदा रहने के लिए कोई

नहीं आता चाहे वह सुखी हो या दुःखी। इसके लिए ऋषियों ने ईश्वर प्रणिधान का नियम बताया है। हमें ईश्वर से ऐसा नाता जोड़ना चाहिए कि कोई तोड़ न सके। लेकिन हम अज्ञानी पुरुष अज्ञान में आकर अमृत को भी विष बना लेते हैं और ईश्वर से विमुख हो जाते हैं। हमने शौच के नियम को छुआछूत में बदल दिया है। इससे हमारे अंदर अहंकार व घृणा पैदा होती है। ऐसे लोगों को तो भगवान भी अपना भक्त नहीं बनाते। हमने संतोष के नियम को भी बिगाड़ लिया है। हम कहते हैं कि हम तो वैरागी हैं हमें कुछ नहीं चाहिए। हम भीख मांगते हैं। परन्तु भिखारी तो नरक में जाता है। लोगों ने तप का रूप ही बदल दिया है। आज लोग ठंडे व गर्म जल में बैठकर, व्रत रखकर तप करने का नाटक करते हैं। इससे मन में अहंकार पैदा होता है। आज स्वाध्याय कहां है? आज लोग किसी को वश में करने के लिए, रिद्धी की प्राप्ति के लिए, इच्छा पूर्ति के लिए ही पाठ करते हैं। यह सब अज्ञान की निशानी है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ भी बदल दिया है। लोग वेष बदल कर भक्त बनने का दिखावा करते हैं। आज ऋषियों की विद्या के साथ खिलवाड़ करते हैं। हमने अपना धर्म बिगाड़ लिया है। इससे हमारी जाति, समाज व देश का नुकसान हुआ है।

****

प्रवचन संख्या-56

अज्ञान ही सभी दु:खों का कारण

मानव की एक समस्या यह है कि उसका मन दु:खी रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के दु:ख का तो उसे बोध है लेकिन उसके बाद का नहीं। इस दु:ख को दूर करने के लिए हमें भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। वह ही हमारे अज्ञान को दूर कर सकते हैं। सारे दु:ख का कारण ही अज्ञान है। अज्ञान का दूसरा नाम अविद्या है। अविद्या में आकर अगर हमें कोई सुख भी मिलता है तो यह सुख भी दु:ख में परिवर्तित हो जाता है। सुख का परिणाम राग व दु:ख का परिणाम द्वेष होता है। यह दोनों ही दु:खदायक हैं। इसे गुरु की शरण में जाकर ही दूर किया जा सकता है। राग व द्वेष जन्म-जन्मांतर के कारण हैं। इसके कारण हमें जन्म व मरण मिलते हैं। राग व द्वेष हर एक में होते हैं। लेकिन इसकी मात्रा कम या अधिक हो सकती है। इनके चार भेद हैं। *प्रसुप्त अवस्था में यह सोये रहते हैं। तनु अवस्था में यह कभी-कभी प्रकट होते हैं। विक्षिप्त अवस्था में ये प्रचण्ड हो जाते हैं। अगर गुरु के पास जाकर भी हम राग व द्वेष से मुक्त नहीं होते तो जरूर हम में कहीं न कहीं कोई कमी है। गीता में योग की

*प्रसुप्त-छिपे हुए, तनु-लघु, विक्षिप्त-कभी-कभी आने वाले, उदार-प्रबल

असली परिभाषा ही यह बताई गई है कि हम समत्व की भावना में रहें। इसके बिना हम चिंतित रहेंगे, दुःखी रहेंगे। इन्हीं के अनुसार हमारा अगला जन्म तय होगा। चार जातियों में से कोई एक जाती हमें मिलेगी। पहली जाति उद्भिज है। उद्भिज का अर्थ जो पृथ्वी से उगते हैं जैसे वृक्ष आदि। देवता भी वृक्ष बन कर आ जाते हैं। दूसरी जाति स्वेदज है। इसमें वह जीव आते हैं जो पसीने से पैदा होते हैं जैसे जूं इत्यादि। तीसरी जाति अण्डज है। इसमें वे जीव आते हैं जो अंडों से पैदा होते हैं जैसे पक्षी व सांप आदि। चौथी जाति जेरज है जिसमें मनुष्य व पशु आदि आते हैं। मनुष्य भी एक पशु ही है। यह तो जानवर से भी अधिक दुःखी रहता है। राग, द्वेष के कारण हमारा दुःख-सुख तथा आयु तय होते हैं।

राग द्वारा लोभ की मात्रा बढ़ती है। इसके कारण मनुष्य हिंसा पर भी उतारू हो जाता है तथा अशुद्ध कर्म करता है। रागी मनुष्य हर समय दुःखी रहता है। राग द्वेष से बचकर ही हम शांति से रह सकते हैं। जब राग द्वेष से रहित इन्द्रियां कार्य करती हैं तो प्रसाद गुण से सुख की प्राप्ति होती है। प्रसाद गुण मुक्ति समान ही है। राग द्वेष साधारण दोष नहीं हैं। यह सब पापों की जड़ हैं। प्रसाद गुण को प्राप्त करने के लिए योगी गुरु की शरण में जाना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-57

स्फूर्ति व शक्ति हठयोग के फल हैं

(योग में 84 लाख आसन व 21 प्रकार की मुद्राएं हैं)

भक्ति व ज्ञान का रंग कई बार समय आने पर फीका पड़ जाता है लेकिन योग का रंग पक्का होता है। चाहे वह रंग हठयोग का हो अथवा राजयोग का। अगर आपने नेति, प्राणायाम आदि सीखे हैं तो आप भूल नहीं पाएंगे। जब हम योग के ग्रंथ पढ़ें तो उनका सार ग्रहण करें। श्रीमद्भगवद गीता आदि योग के ही ग्रंथ हैं। गीता के 18 अध्याय हैं। उनमें जो लिखा है उस पर हम विचार करें। इसके प्रथम 6 अध्याय ज्ञान योग का उपदेश हैं। हम कर्म करें, फल भगवान पर छोड़ें क्योंकि उसमें भगवान की भक्ति व कर्म दोनों हैं। इसके बल पर हम अपने अंत:करण को योग रंग में रंग सकते हैं। योग दर्शन का भी एक सूत्र है - क्रिया योग। इसमें तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान आते हैं।

तप से इंद्रियां वश में आती हैं। स्वाध्याय से ज्ञान मिलता है और ईश्वर प्रणिधान से भक्ति। हठयोग के तीन लक्ष्य हैं शुद्धि, स्फुर्ति व शक्ति। इसके द्वारा हम बीमारी से बचे रहेंगे।

हमारे सभी अंग-प्रत्यंग कार्य करते रहेंगे। इन लक्ष्यों को साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। शुद्धि के लिए हठयोग के अंदर षट्कर्म हैं। इनमें नेति, धौति, नौली, बस्ति, त्राटक व कपालभाति आते हैं। यह सभी योग साधन आश्रमों में सार रूप से करवाए जाते हैं। शरीर का उत्तम अंग सिर है। अगर इसमें मल रुक जाए तो कई प्रकार के दोष आ जाते हैं। नेति तो कई प्रकार की है लेकिन केवल जल नेति से भी इस मल का शोधन किया जा सकता है जो बहुत सुगम है। औषधि द्वारा इस रोग का उपचार करने से साइनस भी हो जाता है। अगर यह मल न निकले तो आंखों की रोशनी कम हो जाती है। कानों के सुनने की ताकत कम हो जाती है। दांतों को पायोरिया हो जाता है। लेकिन जल नेति करने से इन सभी रोगों से बचा जा सकता है। इसी प्रकार अगर गले में, पेट में अथवा श्वास नली में मल रुका रहे तो भी नुकसान होता है। वमन द्वारा पेट व गले की ग्रंथियों को ठीक रखा जाता है। वमन भी अनेकों धौतियों का सार है। आंतों की शुद्धि के लिए शंख प्रक्षालन है। हठ योग के दूसरे लक्ष्य स्फूर्ति के लिए प्राणायाम बताया गया है। यह भी आठ प्रकार का है लेकिन केवल सार रूप से नाड़ीशोधन प्राणायाम ही पर्याप्त है। शरीर की शक्ति और

स्थिरता के लिए आसन और मुद्राएं हैं। आसन करीब 84 लाख व मुद्राएं 21 प्रकार की हैं। आश्रम में मुख्य-मुख्य आसन ही करवाए जाते हैं। इनसे शरीर में शक्ति आती है। योग के अंदर हर अंग प्रत्यंग के साधन हैं। परंतु इन्हें सीख कर ही करना चाहिए अन्यथा नुकसान हो सकता है।

****

प्रवचन संख्या-58

गुरु के बिना मानव भटकता रहता है

(गुरु के बिना मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है)

गुरु के बिना मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है। मोक्ष कर्मों से नहीं बल्कि गुरु कृपा से प्राप्त होता है। मोक्ष के लिए गुरु व योग का होना जरूरी है। गुरु ही शिष्य को सही रास्ता दिखलाता है। गुरु धारण नहीं किया जाता, बल्कि गुरु मिलता है। गुरु के बिना मानव भटकता रहता है। प्रत्येक के भाग्य में गुरु नहीं होता। गुरु उसे मिलता है जिसके अच्छे संस्कार हों। गुरु शिष्य के कर्मों के बंधन को काट देते हैं। गुरु जन्म-जन्मांतर के बंधनों को काटने में समर्थ होते हैं। हमें सांसारिक ज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती। इसके लिए आत्म ज्ञान का होना बहुत जरूरी है। आत्म ज्ञान योगी गुरु से ही मिलता है। हम अपनी इच्छाओं के अनुसार संसार के मायावी कर्मों को करते रहते हैं और यह श्रृंखला सदा चलती रहती है। इच्छाएं ही हमारे जन्म-मरण का कारण बनती हैं। गुरु शिष्य को संतोष की शिक्षा देते हैं। और उसके अनुसार कर्म करवाते हैं। शिष्य को गुरु पर विश्वास होना चाहिए। गुरु पर अविश्वास की स्थिति

में वह गुरु कृपा को प्राप्त नहीं कर सकेगा। गुरु के वचनों का पालन करना शिष्य का प्रथम कर्त्तव्य है। गुरु के शब्द ही वेदमंत्र के समान होते हैं। गुरु का उपदेश ही सच्चा उपदेश है। तीर्थ, व्रत, कर्म व दानादि बिना गुरु की कृपा के प्रभावी नहीं होते। गुरु के चरणों में ही सभी तीर्थ हैं। गुरु के बिना जीवन अधूरा है। उसके बिना परमार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती।

****

प्रवचन संख्या-59

पाप और पुण्य कर्मों के अनुसार ही चलता है जीवन चक्र

(योग आश्रमों में ही बहती है भक्तियोग, राजयोग व हठयोग की गंगा)

पाप व पुण्य कर्मों के अनुसार ही हमारा जीवन चक्र चलता है। जो कर्म हम करते हैं उसका फल मिलना आवश्यक है तथा इस सच्चाई को कोई भी झुठला नहीं सकता। हम भगवान की शरण में जाते हैं, उन्हें याद करते हैं, इसके बाद भगवान हमें जिस मार्ग पर डालते हैं वही सबसे उत्तम होता है। योग से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। योग करने वाला कर्म में विश्वास रखता है। योग हमें पुण्य कर्मों की तरफ प्रेरित करता है। संसार में जितने भी धर्म हैं वे यही शिक्षा देते हैं कि अच्छे कर्म करो। आज का मानव अपने स्वार्थ के लिए इन सब बातों को तोड़-मरोड़ कर आसान रास्ता अपनाने का यत्न करता है। वह सोचता है कि गंगा के स्नान मात्र से उसके सभी पाप धुल जाएंगे जबकि वह गंगा के उस उपदेश को भूल जाता है कि जिस प्रकार मैं पवित्र हूं तुम भी उसी प्रकार पवित्र रहो। संसार

में कोई महापुरुष ऐसा नहीं है जो यह दावा कर सके कि वह भगवान के नियमों का उल्लंघन करने वालों का उद्धार करवा सकता है। किसी भी शास्त्र में यह नहीं लिखा हुआ कि भगवान के नियमों को बदला जा सकता है। धर्मराज युधिष्ठिर को भी छोटा सा झूठ बोलने के कारण कुछ समय के लिए नरक में जाना पड़ा था। सभी धर्म योग से निकले हैं। योग की शिक्षा हमें योग आश्रमों में ही मिल सकती है। आकाश, समुद्र व पृथ्वी की तरह योग आश्रमों की तुलना किसी और से नहीं की जा सकती क्योंकि इन आश्रमों में भक्ति, राजयोग व हठयोग की संयुक्त गंगा बहती है जो कहीं और नहीं बहती। योग ही यह बतलाता है कि अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह का पालन करने से ही प्रभु की कृपा प्राप्त की जा सकती है।

****

प्रवचन संख्या-60

मोह भी मानसिक दु:खों का एक कारण है

योग दर्शन दु:खों से मुक्ति का उपाय बतलाता है। इससे न केवल वर्तमान बल्कि भविष्य में आने वाले दु:खों से भी छुटकारा पाया जा सकता है। मानव को दो प्रकार के दु:ख घेरे रहते हैं। एक शारीरिक दु:ख व दूसरा मानसिक दु:ख। मानसिक दु:ख शारीरिक दु:खों की अपेक्षा अधिक कष्ट दायक होते हैं। हमारा मन एक विशाल समुद्र की तरह है जिसमें इच्छा रूपी कई लहरें उठती हैं। ये लहरें कई बार हमारे लिए मानसिक दु:खों का कारण बन जाती हैं क्योंकि ये हमारी बुद्धि को भी प्रभावित करती हैं। इन इच्छाओं पर नियंत्रण करने से ही मानसिक दु:खों से छुटकारा पाया जा सकता है तथा इसे शांत करने की विधि केवल योगी गुरु ही बतला सकता है। भक्ति भी मन को शांत करने का एक साधन है। लेकिन दु:ख की बात यह है कि आज भक्ति के भी कई रूप हो गये हैं। व्यक्ति के सन्मुख एक इष्ट न होने के कारण वह सभी देवताओं की पूजा करता है जिस कारण उसकी किसी एक इष्ट के प्रति

पूर्ण निष्ठा नहीं बनती। इसी कारण उसका मन अस्थिर रहता है। योगी गुरु से ही एक इष्ट की प्राप्ति होती है। वह शिष्य को, चित्त को इष्ट पर स्थिर करने की विधि बतलाता है। मोह भी मानसिक दु:खों का एक कारण है। हम जिससे मोह करते हैं उसे पूर्णत: सुखी देखना चाहते हैं लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि हम अपना कर्त्तव्य निभाते हुए किसी का भाग्य नहीं बदल सकते। हम अपने पुत्रों की चिंता के बाद पोत्रों की चिंता व फिर पड़पोत्रों की चिंता भी करने लग जाते हैं, जबकि उनकी चिंता उनके अपने माता-पिता का काम है। योग में अपरिग्रह भी बताया गया है जिसके अनुसार हमें इतना ही संचय करना चाहिए जितना आवश्यक हो।

मन को दु:खों से मुक्त रखना जरूरी है क्योंकि शरीर के दु:ख तो इसी शरीर के साथ समाप्त हो जाते हैं लेकिन मन का प्रभाव अगले जन्म पर भी पड़ता है। योग विद्या हमें अगले जीवन का भी रास्ता दिखाती है।

****

प्रवचन संख्या-61

लौकिक कार्यों का भी परमार्थ से सीधा संबंध

योग एक ऐसी विद्या है जो हमें न केवल इस जीवन का बल्कि उसके आगे का रास्ता भी दिखलाती है। इन दोनों रास्तों का बहुत महत्व है। इसका एक पहलू लौकिक है व दूसरा परलौकिक। हमारे लौकिक कार्यों का भी परमार्थ से सीधा संबंध है। योग के पांच यमों का पालन न करने से हमारा परमार्थ बिगड़ सकता है। परमार्थ की शिक्षा हमें गुरु से प्राप्त होती है। गुरु हमारे अंदर के सद्गुणों का विकास कर उसे परमार्थ की ओर लगाते हैं। गुरु अपने प्रति शिष्य के मन में श्रद्धा पैदा करते हैं। इस श्रद्धा को बढ़ाने के लिए हमें अधिक से अधिक गुरु की सेवा करनी चाहिए और उसका सत्संग करना चाहिए। उसकी बातों को जीवन में लाना चाहिए। गुरु सेवा बहुत जरूरी है। गुरु के हृदय में बड़ी शक्ति होती है। अगर वह शिष्य के किसी काम से प्रसन्न हो जाएं तो समझो उसका भाग्य बदल जाता है। जो शिष्य गुरु में ईश्वर नहीं देखता उसकी श्रद्धा हमेशा अधूरी रहती है। गुरु में दोष नहीं

देखने चाहिएं। गुरु भी सांसारिक मर्यादा का अनुसरण करता है। हमें गुरु के अंदर की रोशनी देखनी चाहिए। गुरु की बातों को ही अंतिम रूप से ठीक मानना चाहिए। दूसरे लोग क्या कहते हैं इस बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। गुरु के शब्द वेद के समान होते हैं और वे स्वत: प्रमाण हैं। गुरु जो आज्ञा करता है उसमें कई बार जोखिम रहता है, इसलिए हममें दृढ़ता का होना जरूरी है। शिष्य को गुरु की बात को हर समय स्मरण रखना चाहिए उसके उपदेश याद रखने चाहिएं। जो शिष्य गुरु को याद करते-करते अपने को भूल जाते हैं वह समाधि अवस्था में पहुंच जाते हैं।

****

प्रवचन संख्या-62

हठयोग व राजयोग के बिना भक्ति योग की धारा नहीं बहती

सद्गुरु के बिना हमें कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। माता-पिता जो देते हैं वह गुरु द्वारा दिए जाने वाले मोक्ष से बहुत कम है। योग, गुरु और मुक्ति का आपसी सम्बन्ध है। योग के कई रूप हैं। इनका एक दूसरे के साथ गहरा संबंध है। हठयोग शरीर के लिए है व राजयोग आचरण, मन व बुद्धि के लिए है। इनके पारस्परिक मेल से ही योग बनता है। यह गंगा व यमुना की तरह दो धाराएं हैं जो कि प्रयाग राज में मिलती हैं। लेकिन इसमें सरस्वती की धारा दिखाई नहीं देती। गंगा यमुना की तरह राजयोग व हठयोग की धारा दिखाई देती हैं लेकिन भक्ति की धारा दिखाई नहीं देती। वह सूक्ष्म है। हठ योग, राज योग व भक्ति योग इन तीनों का संगम है। इनके बिना हमें मुक्ति नहीं मिल सकती। हम मन एकाग्र करने के लिए योग करते हैं। इसमें कई रुकावटें आती हैं। योग में इन्हें व्याधि कहा गया है। हमें हठयोग द्वारा शरीर को रोगी होने से बचाना है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि व्याधि आए ही न। अगर

आए तो उसे आरम्भ में ही रोकना चाहिए। व्याधि को आरम्भ में रोकने के लिए योग में उपाय हैं। अगर हम साधारण रोगों को आरम्भ में नहीं रोकेंगे तो यह भयानक बन जाएंगे। पेट से रोग पैदा होते हैं। पेट की कुछ बीमारियां पैदा ही इसलिए होती हैं क्योंकि हम पेट की पूरी शुद्धि नहीं करते। पत्थरी, हरणिया, रसौली आदि हमारी लापरवाही से पैदा होते हैं। पेट दर्द के कई कारण हैं। उनमें से एक वायु का रोग होता है। यह हमारे खान-पान की लापरवाही से होता है। सर्वांगासन व नाभिचालन द्वारा वायु के विकारों को दूर किया जा सकता है। हम जो खाते हैं वह तीन घंटे में पच जाना चाहिए। मेदे में जो चीज़ गई है उसने अपना कार्य करके उसे आंतों में भेजना होता है। अगर आंतें शुद्ध न हों तो भोजन का लाभ नहीं होगा और वह भोजन दूषित मल में परिवर्तित हो जाता है। वमन भी शुद्धि की क्रिया है। इस से पेट साफ होता है। आंतो की शुद्धि के लिए शंखप्रक्षालन किया जाता है। धरण के रोग को भी सर्वांग आसन द्वारा ठीक किया जा सकता है। कईयों का पेट बढ़ जाता है। हद से किसी चीज़ का बढ़ना रोग है। नाभिचालन द्वारा बढ़ा हुआ पेट कम हो जाता है। पीठ के कई रोग हैं। पीठ की दर्द कई प्रकार की होती है। कटिचालन द्वारा डिस्क की

समस्या ठीक हो जाती है। इसके साथ दूधनेति व नाभिचालन भी करना चाहिए। इसे निरंतर करना चाहिए। छाती के रोग योग द्वारा ठीक होते हैं। कटिचक्र, भुजाचक्र, स्कन्धचालन और प्राणायाम इस में सहायक हो सकते हैं। हृदय के रोगों में जलनेति, दूधनेति और प्राणायाम करना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-63

योग के कुछ साधन ही बहुत से रोगों को ठीक कर देते हैं

हमारा जीवन सुख व दुःख की दो तरंगों में डोलता रहता है। हम भगवान से सुख प्राप्त करना चाहते हैं इसलिए हमें उनकी शिक्षाओं पर चलना चाहिए। हमारा जीवन सेवा, सत्संग व स्वाध्याय पर आधारित हो। जो इन तीनों को करता है उसका जीवन सुखी होता है, उसे भटकना नहीं पड़ता। लेकिन हमें यह देखना चाहिए कि हम तीनों के प्रति निष्ठावान हैं या नहीं। भगवान ने योग का उपदेश दिया है। संसार में आज जो योग का अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष प्रचार हो रहा है वह प्रभु जी द्वारा ही हो रहा है। पहले योग जंगलों में छुप गया था। अब फिर योग का स्थान-स्थान पर प्रचार हो रहा है। सारे संसार में योग की चर्चा है। हमें योग करना चाहिए। हमें शरीर व मन से ही दुःख आते हैं।

मनुष्य दो प्रकार के स्वभाव के होते हैं। कुछ शरीर का कष्ट आने पर पहले डाक्टरों का सहारा लेते हैं और लाभ न होने पर योग की तरफ आते हैं। परन्तु जो लोग पहले योग की

तरफ आते हैं वे लाभ में रहते हैं। आरम्भ में रोग कम होता है। वह योग द्वारा शीघ्र ठीक हो सकता है। हठयोग के थोड़े से आसनों से ठीक हो जाता है। योग का एक साधन ही कई रोगों को ठीक कर देता है। दिन व रात में आप जब चाहें साधनों का लाभ उठा सकते हैं। हमें यह ज्ञान होना चाहिए कि कौन से रोग के लिए कौन सा साधन करना चाहिए। यह बात केवल योगी गुरु ही बतला सकता है। सिरदर्द, कान दर्द, नाक के अंदर जुकाम, गले के अंदर की पीड़ा व बालों का असमय सफेद होना आदि रोग नेति द्वारा ठीक हो सकते हैं। कंधे के ऊपर के रोग नेति द्वारा ठीक हो सकते हैं। अगर हम कन्धे के ऊपर के अंगों के लिए दवाइयों का प्रयोग करें तो न जाने कितनी दवाईयां लेनी पड़ेंगी। अगर हम योग से नाता नहीं जोड़ेंगे तो रोग बढ़ भी सकता है। कई बार सिरदर्द, सर्दी-गर्मी व थकावट के कारण होता है। इसमें भी जल नेति सहायता करती है। अगर कमजोरी के कारण दु:खता है तो दूध नेति करें। दूध नेति से माइग्रेन नाम का रोग भी ठीक हो जाता है। कई बार नाक से रक्त बहने लगता है। इसके लिए भी जल नेति व दूध नेति कर सकते हैं। अगर कान बह रहा हो तो पानी में फटकरी डालकर जलनेति करें वह ठीक हो जाएगा। गला

भी बलगम के कारण सूज जाता है, आवाज़ भारी हो जाती है। इसके लिए वमन व वस्त्रधौति क्रिया करनी चाहिए। अगर हम योग पर निष्ठा व विश्वास रखें तो बहुत लाभ होगा। शरीर में जब मल एकत्र हो जाता है तो जोड़ों का दर्द भी शुरू हो जाता है। अगर हम लापरवाही करें तो हड्डियां मुड़ भी जाती हैं। शरीर का स्वरूप बदल जाता है। अगर हम शरीर की सफाई करने लग जाएं तो अंदर जो जगह-जगह मल जमा है वह निकल जाएगा। ऐसे रोगों के लिए योग में वारिसार क्रिया बतलाई गई है। इससे शूगर का रोग भी ठीक हो जाता है।

****

प्रवचन संख्या-64

ईश्वर भक्ति के साथ-साथ पितृ भक्ति व देश भक्ति भी ज़रूरी है

अगर हमारा शरीर व अंत:करण सुखी है तभी हम सुखी हैं। अन्यथा हमारा जीवन दु:खी है। हम योग के साधनों द्वारा शरीर को स्वस्थ रख सकते हैं। हमारे पास चाहे कितने भी सुख के साधन क्यों न हों इनका लाभ तभी है यदि हमारा शरीर स्वस्थ हो। इसके साथ-साथ मन का सुखी होना भी ज़रूरी है। मन सुखी कैसे हो यह एक समस्या है। ईश्वर भक्ति से मन सुखी होता है। ईश्वर भक्ति के अलग-अलग रूप हैं। भगवान की पूजा करने वालों से पूछा कि क्या वे सुखी हैं तो कुछ सुखी थे कुछ नहीं। जो लोग लम्बे-लम्बे पाठ करते हैं उनसे पूछो तो उनका जवाब यही होगा। कई लोग हवन आदि भी करते हैं। लेकिन बात नहीं बनती। जो जप करते हैं, माला फेरते हैं उनमें से भी कुछ सुखी हैं कुछ नहीं। अगर हमें सुख नहीं मिलता तो भक्ति का क्या लाभ? ईश्वर भक्ति सुख का उपाय है। ईश्वर भक्ति के साथ-साथ हमें और भी कुछ करना है। भक्ति की भी त्रिवेणी होती है। एक भक्ति ईश्वर भक्ति है, दूसरी पितृ भक्ति है तथा तीसरी देश भक्ति है। भगवान राम

जंगल चले गए थे। अगर वह पितृ भक्त न होते तो शायद वह भी दु:खी रहते। श्रवण कुमार मरते समय भी सुखी था। माता-पिता की इच्छानुसार चलना, उनकी आज्ञा का पालन करना, उनकी पूरी आयु तक सेवा करना ही पितृ भक्ति है। अगर हम इस भक्ति को अपनाएं तो ईश्वर भक्ति का फल भी अधिक मिलेगा। तीसरी भक्ति देश भक्ति है। इसके बिना सुख नहीं मिलता। अपना कर्त्तव्य ईमानदारी से करना देश भक्ति है। जो व्यक्ति रिश्वत लेता है वह चाहे कितनी भी भक्ति करे, माता-पिता की सेवा करे, तो भी वह सुखी नहीं होगा। एक अध्यापक जो पढ़ाता नहीं, एक दुकानदार जो चोरी करता है वह सुखी नहीं हो सकता क्योंकि वह तो देश द्रोही है। आज जब हम अपने भीतर देखते हैं तो अपने को सुखी नहीं पाते। ईश्वर एक कुआं है जिसका पानी हम चाहते हैं। हम कुएं के पास पहुंच जाते हैं मगर डोरी व लोटा नहीं ले जाते, पानी कैसे प्राप्त होगा? माता-पिता का श्राप लेने वाले, देश के साथ धोखा करने वाले कैसे सुखी हो सकते हैं? हम देश को लूट कर अपने घरों में धन भरते हैं। हम यह भी ध्यान नहीं रखते कि हम अपनी जेब की ही चोरी कर रहे हैं। अगर हमने भक्ति की त्रिवेणी में स्नान करना है तो योग की शिक्षाओं का पालन करना होगा। यह शिक्षाएं योगी गुरु से प्राप्त होंगी।

****

प्रवचन संख्या-65

योग भविष्य में आने वाले दु:खों को दूर करता है

कोई भी व्यक्ति दु:ख नहीं चाहता। योग साधन द्वारा दु:खों से छुटकारा पाया जा सकता है। योग भविष्य में आने वाले दु:खों को दूर करता है। प्राय: हम दु:खों के आने पर उसे दूर करने का प्रयास करते हैं। लेकिन योग दु:खों को आने से पहले उसे दूर करने को कहता है। शरीर के दु:खों की तो संख्या है परन्तु मन के दु:ख असंख्य हैं। चिंता से लेकर आवागमन तक सभी दु:ख हैं। शरीर के रोगों के लिए हठयोग के साधन हैं। नाक छोटा सा है लेकिन यह रोगों के महान प्रवाह का स्रोत है। इसी से कान, दांत, गले के रोग, दमे का रोग आदि आरम्भ होते हैं। योग कहता है कि नाक को शुद्ध रखो, कोई रोग उत्पन्न नहीं होगा। इसके लिए नेति क्रिया बतायी गयी है। नेति एक छोटी सी डोरी होती है जो बहुत से रोगों को दूर करती है। जो लोग पहले योग की तरफ लगते हैं उन्हें अस्पतालों में लाइनों में नहीं लगना पड़ता। पेट एक और भी स्थान है जहां से रोग पैदा होते हैं। इसे रोगों का ज्वालामुखी

कहा जाता है। जिस प्रकार भूमि के नीचे अनेक वस्तुएं हैं। उसी प्रकार पेट के अंदर कई प्रकार के अंग हैं। हमें इस ज्वालामुखी को फटने से बचाना है। योग के कई साधन हैं जिसके द्वारा हम इसे फटने से बचा सकते हैं। इनमें से एक वमन क्रिया है। लेकिन कई लोग सुस्ती के कारण इसे नहीं करते। नौली कर्म भी इसी के लिए है। पेट की शुद्धि के लिए सबसे अच्छी क्रिया शंखप्रक्षालन है। इसके करने से अनेकों रोग दूर हो जाते हैं। यह क्रिया मल से उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर करती है। हमें प्राणायाम भी करना चाहिए। हमारे अंग-प्रत्यंग श्वास के साथ चलते हैं। इनकी देखभाल करनी जरूरी है। जोड़ों के दर्द के लिए भी आसन हैं। आज संसार मानता है कि सबको व्यायाम करना चाहिए व योग से बड़ा कोई व्यायाम नहीं है। हमारा मन शरीर का महासागर है जिसमें कई तरंगें उठती हैं जो हमारे दिमाग को प्रभावित करती हैं। हमें इस तूफानी सागर को शांत सागर में बदलना है। समुद्र की लहरें पृथ्वी के घूमने, हवाओं के चलने व ग्रह हलचल के कारण उठती हैं। मानसिक तरंगों ने हमें हर वक्त दुःखी करना है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण मोह है। मोह की निवृत्ति करनी आवश्यक है। अपने परिवार से मोह योग के

अभ्यास से शांत करना चाहिए। मानसिक तरंगों का दूसरा कारण माया है। हम माया की चिंता में हर समय लगे रहते हैं। इसके लिए अपरिग्रह बताया गया है अर्थात् हमारा जीवन सादा होना चाहिए। वैरागी मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार ही संचय करता है। भक्ति द्वारा मन को शांत किया जा सकता है। हमें प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। इसके लिए हमें एक इष्ट धारण करना चाहिए। अनेक इष्ट होने से हमें इष्टों के कोप से भय लगता रहता है कि कोई एक इष्ट हमारी अवहेलना के कारण रुष्ट न हो जाये। ये भी चिंता का एक कारण है। भगवान कृष्ण ने कहा है कि अर्जुन सब को छोड़ कर मेरी ही शरण में आ जाओ। हमें एक इष्ट की भक्ति करनी चाहिए यही उचित होगा ताकि हमारे चित्त पर एक इष्ट का प्रभाव हो। इष्ट बदलने से चित्त अस्थिर रहेगा। मन में भगवान का ही मंदिर होना चाहिए। चाहे हम कहीं भी रहें वह इष्ट हमारे साथ होगा। अगर मन इस जन्म में अशांत रहा तो अगले जन्म में भी अशांत रहेगा।

****

प्रवचन संख्या-66

बिना गुरु कृपा के कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता

गुरु के प्रति निष्ठा व योग साधना में तत्परता एक साथ चलती हैं। इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि बिना गुरु के कहीं से शिक्षा नहीं मिलती व योग के अतिरिक्त गुरु भी कुछ और शिक्षा नहीं देता। आज से 50-60 वर्ष पहले लोगों को योग के बारे में अधिक जानकारी नहीं थी। योग विद्या केवल किताबों तक सीमित रह गई थी। लेकिन केवल पुस्तक पढ़ने से ही तो ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। कई धर्माचार्य भी इसका नाम केवल अपने-अपने मत के प्रचार के लिए ही लेते थे। आज भी संसार में कई लोग यह शिक्षा देते हैं कि हम ब्रह्म स्वरूप हैं। यह लोग कई बातों द्वारा लोगों को भ्रम में डालते हैं। जबकि योग हमें साधना बतलाता है। योग में शरीर और मन की साधना होती है। जिस गुरु को स्वयं योग नहीं आता वह अपने शिष्यों को क्या शिक्षा देगा। जिस प्रकार हठयोग के बिना शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता उसी प्रकार राजयोग की शिक्षा द्वारा मन की वृत्तियों को काबू किए बिना

मन एकाग्र एवं शांत नहीं हो सकता। योग में कर्म करना पड़ता है। हमें ऐसी साधना करनी चाहिए जिससे कि हम सांसारिक काम करते हुए भी मन को एकाग्र रख सकें। कर्म चाहे छोटा हो अथवा बड़ा ऐसी साधना द्वारा मुक्ति मिल सकती है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं – कर्म, विकर्म व अकर्म। साधारण कर्म को कर्म कहते हैं और पाप कर्म को विकर्म तथा कर्म के फल को भगवान पर छोड़ कर कर्त्तव्य करना अकर्म कहलाता है। क्योंकि इस कर्म में फल की इच्छा न होने के कारण मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है। योगी को विकर्म का त्याग करना चाहिए जैसे झूठ बोलना आदि और उसे कर्म को अकर्म के स्वरूप में बदल देना चाहिए। यम नियमों के अनुसार कर्म करने चाहिएं। अकर्म का मन पर कोई संस्कार नहीं पड़ता। अकर्म की साधना के लिए हमें गुरु की शिक्षा की परम आवश्यकता है।

****

प्रवचन संख्या-67

योग भारतीय संस्कृति का एक अटूट अंग है

योग भारतीय संस्कृति का एक अटूट अंग है लेकिन भारत के वर्षों तक गुलाम रहने के कारण इसकी संस्कृति को दबाया गया, इसके ग्रंथों को तहस नहस किया गया। लेकिन आज योग को फिर से महत्वपूर्ण समझा जाने लगा है। पहले योग को महत्व नहीं दिया जाता था। योग के आसनों पर भी उपहास किया जाता था। लोग कहते थे सिर के बल क्यों खड़े होते हो? आज संसार में योग का कोई विरोध नहीं करता। यहां तक कि अमेरिका में यहूदियों के सेंटर में भी योग सिखाया जाता है।

योग किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं। यह सभी मनुष्यों के लिए है। योगाभ्यास से मनुष्य की संकल्प शक्ति भी बढ़ती है जिससे वह दूसरों को भी लाभ पहुंचा सकता है। श्री कृष्ण व भगवान राम भी योगी हुए हैं। योग वैदिक काल से आरम्भ हुआ। योगी निमाना रहता है। वह दूसरों का सम्मान करना जानता है तथा स्वयं मान की इच्छा नहीं रखता। परन्तु आज

योग का विकृत रूप हमारे सामने आ रहा है और कई योग का ढोंग रच कर अपनी इज्ज़त व पूजा करवाना चाहते हैं। हम योगी महापुरुषों के जन्मदिन भी इसीलिए मनाते हैं ताकि उनके आदर्शों व उपदेशों पर चल सकें। इस दिन उनके द्वारा दी हुई शिक्षाओं को याद करते हैं। योग को जीवन में ढालने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना चाहिए। इस प्रकार हमें योग करने में सुगमता होती है। योग की महत्ता का अनुमान इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि हठ योग की केवल एक मात्र नेति क्रिया से ही कंधे के ऊपर के सभी रोगों का निवारण किया जा सकता है और वे अंग स्वस्थ रह सकते हैं।

****

प्रवचन संख्या-68

गुरु विहीन व्यक्ति संसार में भटकता रहता है

संसार में हमारे प्राणों व अंतर आत्मा का सहारा केवल गुरु हैं। शिष्य के प्राण गुरु के सहारे टिके होते हैं और गुरु को स्मरण करने से हमारी निराशा दूर होती है। हमारे प्राणों में शक्ति आ जाती है। हमारे अंदर जो शारीरिक दुर्बलता होती है वह भी प्राणों की कमज़ोरी से होती है। इसका मन व बुद्धि के साथ भी सम्बन्ध है। यह कमजोरी किसी औषधि से दूर नहीं होती न ही यह किसी प्रकार के धन से दूर होती है। लेकिन यह गुरु की शिक्षा पर चलने से दूर हो जाती है। गुरु चरणों से प्रेम करना ही भक्ति कहलाता है। भक्ति के कई स्वरूप हैं। हमें केवल गुरु चरणों का स्मरण करना चाहिए। इसी से सारे तीर्थों का फल मिलता है। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि – हे अर्जुन! तुम मेरी शरण में रहो। हमारा शरीर, परिवार, धन आदि का इतना महत्व नहीं है जितना महत्व गुरु चरणों का है। जिन लोगों को सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती वे

लोग संसार में भटकते रहते हैं। एक स्थान पर श्रद्धा न होने को ही भटकना कहते हैं। अगर ध्यान करना है तो गुरु द्वारा दिए हुए इष्ट का ध्यान किया जा सकता है। योग की शिक्षा भगवान से आरम्भ होती है। मन के अन्दर पहले धारणा करनी होती है। हम मन के अंदर ईश्वर का स्वरूप धारण करके भक्ति करते हैं। भगवान निराकार है। वह प्रत्येक स्थान पर है, लेकिन उसका साकार रूप हमने देखना होता है। बिना साकार के काम नहीं चलता जिस प्रकार खाना पकाने के लिए आग का होना जरूरी है। अग्नि प्रत्येक वस्तु में होती है। लेकिन फिर भी हमें खाना पकाने के लिए अग्नि प्रज्वलित करनी पड़ती है। अग्नि को साकार रूप देना पड़ता है। योगसाधना करनी है तो इस निराकार स्वरूप को जो कि सर्वव्यापक है साकार रूप देना पड़ेगा। साकार रूप भगवान को इष्ट कहते हैं। इष्ट को परब्रह्म शक्ति मानते हैं इसलिए उसे मन में धारण करते हैं। इष्ट गुरु देते हैं। जिस प्रकार अध्यापक शिष्य को पुस्तक के बारे में बतलाता है तथा उसी पुस्तक को पढ़कर व्यक्ति विद्वान बन जाता है ऐसे ही गुरु साकार रूपी इष्ट देते हैं। योग धारणा यही होती है कि अपने इष्ट देव का हर समय

मन में ध्यान करो। यह साधना हर समय होती रहती है। काम करते समय भी व भोजन करते समय भी। हृदय में भगवान को ध्याने से मन ईश्वर का मंदिर बन जाता है लेकिन इस सब की विधि केवल गुरु ही बता सकते हैं।

****

प्रवचन संख्या-69

जिज्ञासु को गुरु स्वयं आकर मिलता है

गुरु एक प्रकार की ज्योति है जो शिष्य को अंधेरे में रास्ता दिखलाती है। जो अज्ञान को दूर करे उसे ही गुरु कहा जाता है। जब देश अज्ञानता, परतन्त्रता, दु:खों व अनेक प्रकार के तत्वों में डूबा हुआ था, अपने सदाचार व संस्कृति को भूल गया था तब प्रभु रामलाल भी गुरु की खोज में निकले थे। प्रभु जी वर्षों तक देश में घूमते रहे। गुरु तो बहुत थे जो अपने-अपने मठों के अंदर बैठ कर माया में फंसे थे। कुछ तीर्थों में साधु महात्मा रहते थे जो कर्म कांड में विश्वास रखते थे। परन्तु उन्हें योग नहीं आता था। प्रभु जी जानते थे कि कर्म कांड से कुछ नहीं बनता। इसलिए वह योगी गुरु की खोज में घूमते रहे। जन्म मरण के चक्र को काटने के लिए गुरु शिष्य को मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं। गुरु की खोज में प्रभु जी ने अनेकों कष्ट सहे। अवतार भी जब संसार में आते हैं तो वे भी दु:खों का सामना करते हैं। लेकिन यह सब उनकी अपनी ही लीला होती है। लक्ष्मण युद्ध में मूर्छित हुए थे लेकिन उनका बाल भी बांका न हुआ। उस समय योग जंगलों में छिपा हुआ था।

लेकिन परतन्त्र देश में योग की कौन चिंता करता है। लेकिन जो जिज्ञासु होता है उसे गुरु स्वयं आकर मिलता है जैसे श्री प्रभु जी को महाप्रभु जी आकर मिले। हमें भी जिज्ञासु बनना चाहिए। भक्त को दृढ़ करने के लिए भगवान उसकी परीक्षा भी लेते हैं। गुरु अगर संकट में डालते हैं तो उसकी रक्षा भी स्वयं करते हैं। गुरु से शिष्य को पूर्ण ज्ञान मिलता है। योग की प्राप्ति के लिए हमने दो काम करने होते हैं - एक वैराग्य तथा दूसरा अभ्यास। यह योग के लिए आवश्यक है। योग के बिना मुक्ति नहीं मिलती। योग गुरु से मिलता है। हमारे जीवन के चार फल हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनकी प्राप्ति गुरु के बिना नहीं होती। धर्म के कार्य भी गुरु बिना अधूरे हैं। ध र्म के यज्ञ भी गुरु की शिक्षा निर्देश अनुसार होने चाहिए। यम व नियम ही तो धर्म हैं। इस बात को योगी गुरु ही बतलाता है। जीवन का पहला लक्ष्य धर्म है। संसार में हमें जो सामग्री चाहिए यदि वह धर्म से प्राप्त होगी तो ठीक है। अधर्म से प्राप्त सामग्री का परिणाम भयानक होगा। हमें सुख भी गुरु की कृपा से मिलता है। योगी गुरु भक्तों के कष्ट हरते हैं। पहाड़ को राई बना देते हैं। योगी गुरु शिष्य का भविष्य सुधारते हैं। इसलिए वह शिष्य को बुरे मार्ग पर चलने नहीं देते। प्रत्येक व्यक्ति

मोक्ष चाहता है। यह गुरु ही दे सकता है। उसके चरणों में जाकर योग करना चाहिए। इससे शरीर ठीक रहेगा। मन एकाग्र होगा। इसके लिए अभ्यास ज़रूरी है। हमारा मन माया में जाता है। मन को टिकाने के लिए गुरु योग देते हैं। गुरु मन को टिकाने के लिए एक इष्ट देता है। आज लोग इच्छा के अनुसार अपना इष्ट बदल लेते हैं। इसीलिए उनका मन नहीं टिकता। हमें मन व बुद्धि को एक इष्ट के प्रति टिकाना होगा। यह अभ्यास से ही सम्भव होगा। गुरु अपना स्वरूप दिखाकर शिष्य के मन को एक जगह टिकाते हैं।

****

प्रवचन संख्या-70

एकाग्र मन व स्थिर बुद्धि वाले का परलोक भी सुधर जाता है

शरीर, मन व बुद्धि तीनों का स्वस्थ रहना ज़रूरी है। अगर इसमें से एक भी अंग बिगड़ जाये तो जीवन बिगड़ जाता है। हर प्राणी की यह इच्छा होती है कि वह जब तक संसार में रहे सुखी रहे तथा जब वह सांसारिक यात्रा पूरी कर दूसरे लोक में जाये वहां भी उसे सुख की प्राप्ति हो। ऐसा केवल योग के मार्ग पर चल कर ही संभव हो सकता है। सबसे पहले हमें अपनी बुद्धि को स्थिर करना होगा क्योंकि जिनकी बुद्धि भटकती रहती है वह परेशान व चिन्ता ग्रस्त रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारा मन भी एकाग्र होना चाहिए। केवल एकाग्र मन वाला ही सुखी हो सकता है। इसके अतिरिक्त हमारा शरीर स्वस्थ रहना चाहिए। आज दुनिया अधिक दुःखी इसीलिए है क्योंकि उनका शरीर रोगी है। शरीर एक घड़े के समान है जो ठोकर लगने से टूट सकता है। गीला होने से गल सकता है। इसे योग की अग्नि में पकाना होगा ताकि यह संसार की चोटों का मुकाबला कर सके।

इन तीनों बातों को हम गुरु से सीख सकते हैं लेकिन इसके निरन्तर अभ्यास की ज़रूरत है। बुद्धि को ज्ञान द्वारा स्थिर किया जा सकता है। गुरु का भी कर्त्तव्य है कि वह जो बात बतलाये वह शास्त्रों के अनुसार होनी चाहिए क्योंकि वही ज्ञान है। गीता में भगवान ने कहा है कि जीव सनातन है, वह मेरा ही अंश है। संसार के अंदर दो प्रकार के तत्व हैं - एक ईश्वर व दूसरा प्रकृति। जिस प्रकृति से हमारा शरीर बना है, उसी से दूसरे का शरीर भी बना है। किसी में कोई भेद नहीं। मनुष्य ही नहीं चींटी भी ईश्वर का अंश है। ज्ञानी व्यक्ति इस बात को समझता है। अगर हमारे मन में यह बात बैठ जाये तो बुद्धि स्थिर हो जायेगी। मन को स्थिर करने के लिए उसे एक स्थान पर टिकाना होगा। इसके लिए लम्बे अभ्यास की आवश्यकता है।

गुरु बतलाता है कि मन को कहां टिकाना है। अगर मन को जगह-जगह टिकाने का प्रयास करेंगे तो यह टिकने के स्थान पर डोलता रहेगा। जिसका मन एकाग्र हो गया व बुद्धि स्थिर हो गई उसका यह लोक भी सुधर जाता है व परलोक भी सुधर जाता है। गुरु ध्यान लगाने के लिए एक इष्ट देता है। उसका अभ्यास करने से मन एकाग्र हो जाता है। शरीर को

स्वस्थ रखने के लिए गुरु की शरण में रहकर योगाभ्यास करना चाहिए।। योग के साधन गृहस्थ में रहकर भी किए जा सकते हैं। नेति, प्राणायाम, आसन आदि करने से हम शरीर पर होने वाले रोगों के आक्रमण से बच सकते हैं। योग अन्दर की शुद्धि की बात करता है। अगर अन्दर शुद्धि नहीं होगी तो अन्दर के मल से रोग पैदा होंगे। मल एक शक्ति भी है लेकिन जब यह कुपित हो जाता है तो रोग बन जाता है। जिसके दिमाग में मल इकट्ठा हो जाता है वह इस काबिल नहीं रहता है कि ज्ञान की बातें सोच सके।

****

प्रवचन संख्या-71

गुरु के बिना मन में भगवान की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती

जिस प्रकार शरीर को पकवान की ज़रूरत होती है उसी प्रकार मन को भगवान व बुद्धि को ज्ञान की आवश्यकता होती है। अगर मन को भगवान नहीं मिलेगा तो यह माया से मैला हो जायेगा। केवल राम राम करने से ही भगवान की प्राप्ति नहीं हो जाती। भगवान के अनेकों रूप हैं। सब अपने मन में भगवान का नाम जपने का प्रयास करते हैं लेकिन मन फिर भी एकाग्र नहीं होता। मन में भगवान अपने आप नहीं आते। सद्गुरु मन के अन्दर भगवान प्रतिष्ठित करते हैं। मन्दिर में मूर्ति लाने से ही सब कुछ नहीं होता, उसकी प्राण प्रतिष्ठा भी करनी पड़ती है। भगवान की मूर्ति मन्दिर में आकर ही पूजा के योग्य बनती है। उस मूर्ति का अगर कोई भाग खण्डित हो जाये तो उसकी पूजा नहीं होती।

गुरु के बिना मन के अंदर भगवान के किसी रूप की प्रतिष्ठा स्थायी रूप से नहीं होती। गुरु हमें एक इष्ट देता है जो हमारा भगवान होता है। अगर हम मन्दिर में तरह तरह की

मूर्तियां रख दें तो वह स्थान मन्दिर नहीं म्यूज़ियम बन जाता है। मन भी एक मन्दिर ही है अतः इसमें एक ही इष्ट होना चाहिए।

बुद्धि को ज्ञान की जरूरत है। ज्ञान एक ही है। ज्ञान के ऊपर हम चाहे जितनी भी चर्चा करते रहें लेकिन सच्चाई यही है कि संसार के प्रत्येक जीव में भगवान का अंश विद्यमान है। वह सनातन अंश है। आत्मा न कभी मरती है व न कभी जन्म लेती है क्योंकि भगवान कभी मरते नहीं न ही उनका कभी जन्म होता है। भगवान व प्रकृति के बिना सृष्टि नहीं बन सकती। प्रकृति से ही शरीर व इन्द्रियां बनी हैं। इस ज्ञान को धारण करना होगा तभी बुद्धि स्थिर होगी, नहीं तो यह भ्रान्तियों में पड़ी रहेगी। जब बुद्धि स्थिर होती है तो मनुष्य ज्ञानवान बन जाता है। जब वह ज्ञानवान होता है तो उसका स्वरूप बदल जाता है। उसकी सारी कामनायें छूट जाती हैं। उसकी सांसारिक इच्छायें धीरे-धीरे कम होती चली जाती हैं। वह आत्मा में संतुष्ट रहता है। उसे भटकना नहीं पड़ता। ज्ञानवान व्यक्ति दुःख आने पर घबराता नहीं बल्कि उसका मन शांत रहता है। वह सोचता है कि शरीर तो नाशवान है इसका अंत निश्चित है। लेकिन आत्मा अमर है फिर चिंता क्यों? उसे न किसी

वस्तु से मोह होता है न ही किसी से भय लगता है। क्रोध जो कि मन का दोष है वह उसे भी अपने ज्ञान द्वारा शांत कर लेता है। वह शांतिपूर्वक अपना कर्त्तव्य निभाता रहता है। उस व्यक्ति का न कोई शत्रु होता है न मित्र। उसका नाता तो केवल परमपिता परमेश्वर से होता है। उसकी इन्द्रियां उसके वश में होती हैं।

****

प्रवचन संख्या-72

नारी का अपमान भारतीय संस्कृति पर कलंक है

(दहेज स्त्रियों के अपमान का मुख्य कारण है)

भारतीय संस्कृति सबसे ऊंची है। यहां कन्या से लेकर पत्नी तक की पूजा की जाती है। हमारे देश में ही कन्या दिवस (अष्टमी पूजन के रूप में), बहन दिवस (रक्षा बंधन पूजन के रूप में) व पत्नी दिवस (करवा पूजन के रूप में) आदि त्यौहार के रूप में मनाए जाते हैं। हमारे देश में देवियों की पूजा की जाती है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक जितने देवियों के मन्दिर हैं उतने देवताओ के नहीं हैं। इसका कारण यह है कि हमारी संस्कृति शक्ति की पूजा करती है व औरत को शक्ति माना गया है। रामायण में दशरथ की पत्नी कैकेयी युद्ध में अपने पति के साथ भाग लेती थी। महाभारत में द्रौपदी पाण्डवों की शक्ति थी। वह ही पाण्डवों को प्रतिशोध की प्रेरणा देती थी। यह ठीक है कि औरत शक्ति है लेकिन हम इसका अपमान करने में भी पीछे नहीं हैं। यह हमारी संस्कृति पर एक कलंक है। पिता के घर बेटी का व ससुराल में बहू

का अपमान किया जाता है। दु:ख की बात है कि हमारे धर्म गुरु इस संबंध में आंखें मूंदे बैठे हैं।

नारी का अपमान भारतीय संस्कृति की महान परम्पराओं के विपरीत है। हमें मानव जन्म भी अपनी संस्कृति के उत्थान के लिए मिला है। लेकिन हम बुज़दिल हो गए हैं तथा कुरीतियों व रोगों में फंस कर रह गए हैं। अपने धर्म की तरफ देखो क्योंकि धर्म ही हमारी संस्कृति का आधार है।

हमारा आहार, विचार व व्यवहार ही धर्म के तीन आधार हैं। आज हमारा आहार बिगड़ चुका है। जो व्यक्ति सात्विक आहार नहीं करता वह धर्म से गिर जाता है। विदेशी लोग जीव हत्या को ही अपना आहार समझते थे लेकिन अब वह भी हमारी संस्कृति की तरफ देखकर सात्विक आहार को समझने लगे हैं। लेकिन दु:ख की बात है कि हम भी सात्विक आहार के महत्व को भूलते जा रहे हैं। आज विवाह शादियों में जानवरों को पकाया जाता है व मदिरा पान कराया जाता है। इसे लोग सामाजिक शान समझने लगे हैं। धर्म पर जनता व सरकार की तरफ से भी आक्रमण हो रहा है।

कई लोग अपने लाभ के लिए ही नशे के व्यापारी बने

हुए हैं। सरकार भी केवल एक्साइज़ ड्यूटी की तरफ ध्यान देती है। उन्हें धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। धर्म कहता है कि हमारे विचार भी ईश्वरीय होने चाहिए। संसार में आप ईश्वर को देखें। सबमें भगवान का अंश है। ईश्वर के अंदर चमत्कारी शक्ति है, उसके पास प्रकृति है, वह जो चाहे उससे बना सकता है। हमारा शरीर भी हमारे अंदर बैठे ईश्वर के अंश ने बनाया है। जब हमें इस बात का ज्ञान हो जाएगा हमारे अंदर राग द्वेष नहीं रहेगा। शास्त्र कहते हैं कि जो दूसरों को आत्मरूप में अपने समान देखता है वही पंडित है।

विचार से ही कर्म बनता है। विचारों से ही हमारा व्यवहार बनता है। व्यवहार हमारे विचारों की कसौटी है। हमें दूसरों के लिए जीना सीखना चाहिए क्योंकि अपने लिए तो सब जीते हैं। संसार हमें धर्म के मार्ग से बहुत विचलित करता है मगर हमें इससे बच कर रहना है।

****

प्रवचन संख्या-73

गुरु और शिष्य का आध्यात्मिक संबंध होता है

गुरु ईश्वर का स्वरूप है तथा शिष्य से उसका अनादि एवं आध्यात्मिक संबंध होता है। गुरु के अतिरिक्त सारे संबंध शारीरिक हैं। कुछ लोग यह संशय करते हैं कि इस जन्म में जो गुरु मिले हैं वे अगले जन्म में कैसे मिलेंगे? यह दृष्टिकोण उन लोगों का है जो गुरु को शरीर मानते हैं। ईश्वर रूप में गुरु शिष्य को किसी न किसी रूप में सदा ही मिल सकते हैं तथा वे जन्म जन्मांतर तक शिष्य के साथ रह कर शिष्य को मोक्ष तक पहुंचाते हैं। शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरु को आत्म रूप समझे। यदि वह उसे मनुष्य समझेगा तो उसे गुरु के अंदर मानवीय त्रुटियां नज़र आएंगी जिससे वह संशित हो जाएगा तथा अपने शिष्य धर्म से गिर जाएगा। गुरु ईश्वर होते हुए भी शरीर की मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता ताकि संसार की मार्यदाएं बनी रहें। गुरु संसार की मर्यादाओं की शिक्षा देने के लिए स्वयं मर्यादा में रहता है। जो शिष्य गुरु को इस रूप में देखता है उसके साथ गुरु हमेशा रहते हैं। वह ईश्वरीय शक्ति उसके लिए किसी भी क्षण प्रकट हो सकती है। वह कोई भी रूप धारण कर सकती है। इसी में शिष्य का परम हित होता

है। प्राय: शिष्य गुरु से सांसारिक सुख की ही कामना करता है, परंतु गुरु शिष्य को सुख के साथ-साथ दुख भी देते हैं। जैसे कहा गया है कि **"कड़वी औषधि बिन पीए जाए न जीर्ण रोग"** अर्थात् जैसे सामान्य बिमारी के लिए भी कड़वी दवाई पीनी पड़ती है, ऐसे ही अपने कर्मों वश जन्म-मरण से छूटने के लिए कई दु:ख भी उठाने पड़ते हैं। वे दु:ख भी शिष्य को गुरु की इच्छा से ही आते हैं। लेकिन शिष्य अज्ञान वश प्राय: दु:खों से संशयात्मा होकर अपने धर्म से गिर जाता है। गुरु के कई स्वरूप हैं। कुम्हार रूप में वह शिष्य के दोषों को समाप्त कर उसे सम्पूर्ण बनाता है। रंगरेज रूप में वह शिष्य को अच्छे से अच्छे रंग में रंगता है। गुरु की तुलना चंदन से भी की जा सकती है। गुरु अपनी सुगंध से शिष्य को अपना स्वरूप बना सकते हैं। यदि शिष्य ने गुरु से कुछ प्राप्त करना है तो उसे गुरु को ईश्वर मान कर उसकी शरण ग्रहण करनी चाहिए। कई लोग यह कहते हैं कि उन्हें गुरु चाहिए मगर वह उसकी पहचान व खोज कैसे करेंगे? उसके भीतर की जिज्ञासा ही उसकी खोज है। वह जिज्ञासा पूर्ण गुरु को शिष्य के पास इस प्रकार ले आती है जिस प्रकार भूमि के बहुत तपने पर वर्षा स्वयं आ जाती है।

****

प्रवचन संख्या-74

धार्मिक शिक्षाओं का अनुसरण किए बिना तीर्थ यात्रा का कोई लाभ नहीं

धार्मिक स्थानों की यात्रा करने का तब तक कोई लाभ नहीं जब तक कि हम वहां से मिलने वाली शिक्षाओं पर मनन और उनका पालन नहीं करते। प्रायः लोग गर्व के साथ कहते हैं कि हम तीर्थ यात्रा करके आए हैं। लेकिन वे यह विचार नहीं करते कि वे वहां से क्या शिक्षा लेकर आए हैं? योग आश्रमों में योग की विद्या की शिक्षा दी जाती है। यदि हम योग विद्या का अनुसरण नहीं करते तो आश्रम में आना भी व्यर्थ है। हमें योग आश्रमों अथवा तीर्थ स्थानों पर जाकर अपने सुखों की तरफ ध्यान न देकर वहां से मिलने वाले ज्ञान की तरफ ध्यान देना चाहिए। हम गंगा स्नान के लिए जाते हैं जहां हमें बर्फ जैसे शीतल जल से स्नान करना पड़ता है। गंगा हमें गर्म जल नहीं देती। इसी प्रकार जब हम श्री अमरनाथ जी की यात्रा पर जाते हैं तो शिवलिंग से पिघली हुई बर्फ के पानी से स्नान करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि हमें शारीरिक तप अर्थात् दुःख-सुख सहन करने का अभ्यास करना चाहिए। आश्रमों में

आकर ज्ञान व हठ योग की तरफ ध्यान देना चाहिए। जो अनुभवी व्यक्ति हैं उनका यह कर्त्तव्य है कि वे नए साधकों को योग के साधन सिखाने में सहायता करें। यदि वे उनको हठयोग की शिक्षा देने में सहायता नहीं करते तो वह गुरु के कार्य में सहायक नहीं होते। योग द्वारा ही मनुष्य पूर्ण आयु स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकता है। योग द्वारा और उसके विपरीत औषधियों द्वारा उपचार करने में बहुत अन्तर है।

****

प्रवचन संख्या-75

गुरु ही भक्ति के बीज को अंकुरित करता है

योग की त्रिवेणी द्वारा ही हम दु:खों से छुटकारा पा सकते हैं। इसी से हमारे सारे पाप कट सकते हैं। इस त्रिवेणी की पहली धारा हठयोग है जिसमें नेति, धौति, प्राणायाम व आसन आदि आते हैं। जिस प्रकार यमुना में नहाने से आनंद आता है उसी प्रकार हठयोग करने से हमारा शरीर स्वस्थ और सुखी रहता है। दूसरी धारा राजयोग की धारा है। इससे हमारा आचार, व्यवहार व आहार ठीक होता है। इसके यम व नियम का पालन करने से कई बुराईयों से मुक्ति पाई जा सकती है। अगर संसार इस धारा में नहाने लगे तो संसार से कलेश, कलह व अंधविश्वास समाप्त हो जाएंगे। जिस प्रकार गंगा यमुना से अधिक बड़ी है इसी तरह राजयोग हठयोग से अधिक महत्व का है। इसका पालन करना भी कुछ कठिन है। नेति करने की अपेक्षा सत्य का पालन करना कठिन होता है। योग की तीसरी धारा भक्ति की धारा है। यह सरस्वती है। भक्ति गुप्त होती है। हठयोग के साधन दिखलाई देते हैं। यम, नियम आदि दिखलाई

देते हैं। लेकिन भक्ति दिखलाई नहीं देती। यह सरस्वती धारा के समान अन्तरआत्मा में छिपी रहती है। इसके बिना योग की त्रिवेणी नहीं बनेगी। भक्ति मुक्ति के लिए है। यह आत्मा का कल्याण करती है। भक्ति एक रस है, इसके बिना राजयोग व हठयोग भी नीरस हैं। भक्ति एक बीज है जो प्रत्येक व्यक्ति के अंदर संस्कार रूप में मौजूद होता है। कहीं भी चले जाओ सब भक्ति का प्रदर्शन करते हैं। कोई मूर्ति पूजा करता है तो कोई यज्ञ करता है। सबके भीतर का भक्ति बीज ही उन्हें यह करने को प्रेरित करता है। हमें इस बीज को अंकुरित करना है। भक्ति के बीज का माली गुरु है। गुरु के बिना ज्ञान, तीर्थ स्नान, यज्ञ सब व्यर्थ हैं। अगर हम अपने अंदर की भक्ति की चिंगारी को बढ़ाना चाहते हैं तो पूर्ण सद्गुरु की खोज करनी होगी। जिस प्रकार शेर प्रत्येक जंगल में नहीं होता उसी प्रकार पूर्ण सद्गुरु हर जगह नहीं मिलते। गुरु को ढूंढना पड़ता है। इसके लिए हमें कई प्रयत्न करने पड़ते हैं। जीवन में सर्वप्रथम हमें गुरु की आवश्यकता है। गुरु ही शिष्य को इष्ट देता है। गुरु द्वारा दिए इष्ट को ईश्वर मान कर साधना करनी चाहिए। इष्ट गुरु का ही दूसरा रूप है। गुरु के वचनों को आत्मवचन समझना चाहिए। गुरु के वचनों का पालन करने हेतु भगवान

राम भी वन को गए थे। अगर वे वनों को न जाते तो शायद आज भारत में राक्षसों का राज होता। हमें योग व गुरु की निंदा नहीं सुननी चाहिए।

हमारा कानरस व आंखरस बहुत ज्यादा है। हम जो सुनते हैं, हो सकता है वह गुरु के वचनों से मेल न खाता हो। इससे शंका पैदा होती है। इससे बचना चाहिए। हम इच्छा पूर्ति के लिए दूसरे स्थानों पर जाना शुरू कर देते हैं जिससे हमारा गुरु के प्रति विश्वास कम हो जाता है। हम भटकने लगते हैं। हम में कई प्रकार के भ्रम भी बने रहते हैं। उन भ्रमों से आशंकित नहीं होना चाहिए।

****

प्रवचन संख्या-76

इन्द्रियों को वश में करना ही तप है

योग व धर्म के नियम सदैव एक रहते हैं जबकि दुनिया के नियम स्थान व काल के अनुसार बदल जाते हैं। योग ही भवसागर से पार होने का आधार है। ऋषियों ने इसके लिए यम, नियम का पालन करने को कहा है। हमें इनके सार को उसी भावना से ग्रहण करना चाहिए जिस भावना से उन्होंने इन्हें हमारे सामने रखा है। अगर हम इसके स्वरूप को बदल देते हैं तो धर्म से गिर जाते हैं। स्वाध्याय नियमों का हिस्सा है। इसका अर्थ है कि जो अनादि ज्ञान है उसको हम पढ़ें। अगर हम स्वाध्याय को समझे बिना यह सोच कर पढ़ें कि धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने से हमें पुण्य प्राप्त होगा तो यह गलत होगा। हम अपनी मन-मर्ज़ी करते रहते हैं। पाप किताब पढ़ने से नहीं बल्कि उसके ज्ञान प्राप्त करने से दूर होंगे।

इन्द्रियां बड़ी प्रबल हैं। ये मनुष्य को गुमराह कर देती हैं उन्हें वश में करना ही तप है। लेकिन हम शरीर को कष्ट मात्र देने को ही तप मानते हैं। यह धारणा भी ठीक नहीं। नियम का पहला अंग शौच है। शौच से हमारे शरीर की रक्षा होती है।

हम मन वचन व कर्म से शुद्ध रहें। हमें शरीर, स्थान व वातावरण को शुद्ध रखना चाहिए। शरीर की शुद्धि के लिए ऋषियों ने षट्कर्म, नेति, धौति, त्राटक व शंखप्रक्षालन बतलाया है लेकिन हमने इसका विपरीत अर्थ निकाल लिया है। हमने शुद्धि को छुआछूत में बदल दिया है। हम धर्म से पाप की तरफ चले गये हैं।

हमने ईश्वर के नियमों को बिगाड़ कर रख दिया है। परिणाम स्वरूप समाज पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। हमने अहिंसा को भी कायरता में बदल दिया है। अहिंसा का अर्थ है कि हमें मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख नहीं पहुंचाना चाहिए। किसी की रक्षा करना भी अहिंसा गुण है। युद्ध में शत्रु का वध करना भी हिंसा नहीं है। अगर ऐसा नहीं होगा तो अहिंसा कायरता का रूप धारण कर लेगी।

****

❖ योग साधन आश्रम के नियम ❖

(श्री योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज द्वारा रचित)

1. आश्रम में किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती।
2. पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्रियां साधन सिखलाती हैं।
3. आश्रम के विद्यार्थी तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं : –

   (क) जो सर्वदा आश्रम में रहकर अपने साधन को करते हुए आश्रम की यथा योग्य परिचर्य्या और अन्य भाईयों की प्रेम पूर्वक सेवा करेंगे।

   (ख) जो साधक यथा अवकाश आश्रम में रहकर स्वयं साधन सीखकर अपने देश में जाकर दूसरों को भी अपने अनुभव से लाभ पहुंचाते हुए प्रचार करेंगे।

   (ग) जो आश्रम में आकर साधनों से लाभ उठाएंगे।
4. प्रत्येक साधक को अपने सब खर्च का प्रबन्ध आप करना होगा।
5. रोगी साधक को अपने रोग निवारणार्थ कम से कम एक मास रहने का प्रबन्ध करके आना चाहिये, किन्तु जो भगवद्भक्ति मानसिक शान्ति के लिये योग के अन्तरंग साधन करना चाहते हों उनको श्री गुरु जी के ही विचार पर सदा निर्भर रहना होगा।

6. प्रत्येक साधक को अपनी दिनचर्य्या तथा रात्रिचर्य्या (टाईम टेबल) श्री गुरु जी की आज्ञानुसार नियत करनी होगी।

7. योग चिकित्सा से चिकित्सित होने वाले साधक को अपने चिकित्सा काल के अन्दर किसी भी डाक्टर वैद्य या हकीम की दवाई खाना निषिद्ध है।

8. यदि कोई साधक अन्य साधकों के किसी साधन को देखकर बिना अनुमति स्वयं उन साधनों को करेगा तो उस से लाभ हानि का जिम्मेवार वह स्वयं होगा और आश्रम के आचार्य के अनुशासन हीनता का भी भागी होगा।

9. २० वर्ष से कम आयु वाले को उसके संरक्षकों की सम्मति से प्रविष्ट किया जायेगा।

10. स्त्रियों को संबन्धियों के साथ आना चाहिये या वृद्ध स्त्री को जो संरक्षक हो उसी के साथ आना चाहिये।

11. साधकों को जो भी कोई उपासना या साधन दिया जावे उसे नित्य नियम पूर्वक करना होगा और आचार्य जी की आज्ञा के बिना अन्य कोई मनमानी नूतन उपासना या धारणा नहीं करनी होगी।

****